नटनागर-विनोद

कवि

श्रीमान् स्वर्गीय महाराजकुमार श्री रतनसिंह जी "नटनागर"

(सीतामऊ के भूतपूर्व युवराज)
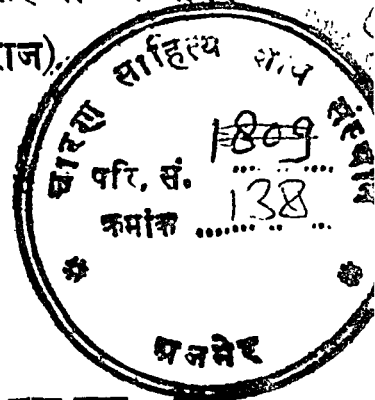
सम्पादक—

पं० कृष्णविहारी मिश्र, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, में

मुद्रित

प्रथम संस्करण] १९३५ [१९९१ वि० सं०

विषय-सूची

भूमिका

नटनागर-विनोद

पं० कृष्णविहारी मिश्र, बी० ए०, एल्-एल्० बी०।

भूमिका

१—कवि के पूर्वजों का वृत्तान्त

कान्यकुब्ज देश के विख्यात नरेश भानुकुल-कमल-दिवाकर महाराजा जयचन्द को कौन नहीं जानता है। अपने समय में इन राठौर-वंशावतंस महाराजा जयचन्द का पूर्ण आतंक था। उत्तरी भारत में इनकी कन्नौज राजधानी विश्व-विख्यात थी। समय की गति के अनुसार राठौरों ने कन्नौज देश को छोड़ दिया और राजस्थान देश में अपनी विजय-वैजयंती फहराई। महाराजा जयचंद के प्रपौत्र का नाम अस्थान जी था। मारवाड़ में इन्होंने ही पहले-पहल राठौर-राज्य की जड़ जमाई। अस्थान जी की दसवीं पीढ़ी में प्रसिद्ध जोधपुर राजधानी को बसानेवाले राव-जोधा जी हुए। रावजोधा जी की सातवीं पीढ़ी में मोटाराजा नाम से प्रसिद्ध उदयसिंह जी हुए। मोटाराजा जी के सत्रह पुत्र थे, इनके नवें पुत्र का नाम दलपतिसिंह जी था। बड़देड़ा, खेरवा और पिसागुञ्ज यह तीन परगने इनके अधिकार में थे। दलपति-सिंह जी के पाँच पुत्र थे जिनमें सबसे बड़े महेशदास जी प्रबल पराक्रमी और सच्चे शूरवीर थे। बादशाह शाहजहाँ के ये विशेष रूप से कृपापात्र थे। पिता के समान ही महेशदास जी के भी सौभाग्य से पाँच पुत्र-रत्न थे। इन सबमें ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंह जी वास्तव में कुल-रत्न थे। ये बड़े ही साहसी, निर्भीक और पराक्रमी योद्धा थे। दिल्ली में एक बार इन्होंने एक मदोन्मत्त शाही हाथी को अपने प्रचण्ड प्रहार से भयभीत करके भागने के लिए विवश किया था। संयोग से उस समय बादशाह महल
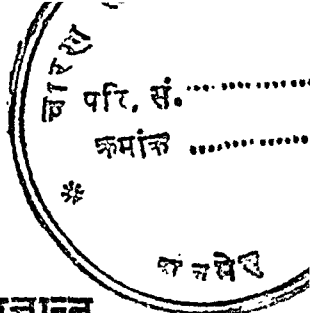
के ऊपर विराजमान थे। अद्भुतकर्मा रतनसिंह जी के इस प्रचंड पराक्रम पर बादशाह मुग्ध हो गये और नवयुवक राठौर-वीर रतन-सिंह जी को पुरस्कार में शाही सेना-विभाग में उच्च पद प्रदान किया। फिर तो इन्होंने खुरासान और क़न्धार की लड़ाइयों में वह पराक्रम दिखलाया कि सर्वत्र इनकी प्रशंसा होने लगी। भाग्य ने ज़ोर मारा और बादशाह ने तिरपन लाख वार्षिक आय की एक विशाल जागीर इनको मालवा-प्रांत में प्रदान की। इस प्रकार रतनसिंह जी का मालवा प्रांत से स्थायी संबंध स्थापित हुआ। कुछ समय के बाद रतनसिंह जी ने अपने नाम पर रतलाम नगर बसाया और उसे राजधानी बनाकर वहीं से राज्य-शासन का संचालन करने लगे। रत्नललाम (रतलाम) रतन-सिंह जी की कीर्ति को आज भी मालवा-प्रांत में प्रकट कर रहा है।

शाहजहाँ के पुत्रों में दिल्ली के राजसिंहासन के लिए जो घोर युद्ध हुआ था उसमें महाराजा रतनसिंह जी ने बड़ा पराक्रम दिखलाया था। बादशाह शाहजहाँ की सेना का संचालन जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह के हाथ में था। राजा रतनसिंह जोधपुर-नरेश के दाहिने हाथ थे। इस युद्ध में राजा रतनसिंह ने वीर-गति प्राप्त की।

महाराजकुमार रतनसिंह जी (नटनागर) ने 'नीसाँणी सिर-खुली' में—डिंगल-भाषा में—इनके यश का विशद वर्णन किया है। इस वर्णन में उपर्युक्त युद्ध का रोमाञ्चकारी चित्र खींचा गया है। कविता खूब ओजपूर्ण है। कुछ पद्य यहाँ पर उद्धृत किये जाते हैं:—

जसवंत फौज सँभाली, भैया रतन कहाँ ?
फिदव्याँ ने गुजराली, राजा रतन पुर।

साज जुद्ध गय चाली, लेण राठौड़ नूँ;
सुथर लखे रतनाली, दिल ह्वा बाकबाक।
खत नजरों बिच मांली, तोषा खान खुट;

× × × × ×

गिरभ ओंत ले चाली, जाँण पतंग डोर;
रतन पड़े रण खाली, औरंग धू अड़ग।

× × × × ×

औरँग लहर अथाह, चढ़ी घणी चोंडाहरा;
गयँद-खुरा सूँ गाह, तैं दाबी माहेस तण।

× × × × ×

औरँग तिमिर अपार, पसर्‌यो इल ऊपर प्रबल।
जुको अँधारो जार, तूँ ऊगो माहेस तण।

युद्धस्थल के पास ही महाराजा रतनसिंह जी की छतरी बनवा-कर उनके वंशजों ने उनकी कीर्ति-रक्षा का स्तुत्य प्रयत्न किया है।

ऊपर बतला चुके हैं कि महाराजा रतनसिंह जी रतलाम राजधानी से मालवा-प्रांत पर किस प्रकार हुकूमत करते थे। रतन-सिंह जी के पौत्र का नाम केशवदास जी था। केशवदास जी के समय में एक दुर्घटना घटी। बादशाह औरङ्गज़ेब का एक अफ़सर मालवा-प्रांत में जज़िया वसूल करने के लिए आया, कुछ अदूरदर्शी लोगों ने इसका वध कर डाला। जब बादशाह को यह समाचार मिला तो वह बहुत अप्रसन्न हुआ और केशवदास जी की सम्पूर्ण जागीर ज़ब्त कर ली एवं यह आज्ञा भी निकलवा दी कि केशवदास जी एक हज़ार दिन तक शाही दरबार में उपस्थित होने के अधिकार से वंचित किये गये। केशवदासजी वास्तव में निर्दोष थे परन्तु इस समय वे कर ही क्या सकते थे। आख़िर जब दरबार में प्रवेश करने की निषेध-आज्ञा का समय बीत गया

तव दरवार में उपस्थित होकर इन्होंने अपनी निर्दोषिता पूर्णरूप से प्रमाणित कर दी। बादशाह फिर प्रसन्न हुए और सन् १६९५ ई० में इनको दूसरी जागीर प्रदान की। तीतरौद परगने में सीतामऊ ग्राम को इन्होंने अपनी राजधानी बनाया। बादशाह औरङ्गज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़लराज्य में बड़ी गड़बड़ी रही। जब फ़र्रुख़सियर राजसिंहासन पर बैठा तो सन १७१७ ई० के लगभग उसने केशवदास जी को आलौट का एक और परगना दे दिया।

महाराज केशवदास जी के बाद गजसिंह जी और फ़तेहसिंह जी ने सीतामऊ के राजसिंहासन की शोभा बढ़ाई, परन्तु यह समय इस राज्य के लिए अच्छा नहीं रहा। इसी समय में नाहरगढ़ और आलौट के परगने इस राज्य से निकल गये और उन पर क्रम से ग्वालियर और देवास का प्रभुत्व हो गया। फ़तेहसिंह जी के बाद महाराजा राजसिंह जी गादी पर विराजे। इन्होंने बड़ी योग्यता से राज्य की बिगड़ी अवस्था को सुधारा और उसे समृद्धि के मार्ग पर लाये। प्रसिद्ध पिंडारी युद्ध के बाद सन् १८१८ ई० में सीतामऊ और ईस्ट–इंडिया-कम्पनी के बीच में एक महत्त्वपूर्ण संधि हुई। इसके अनुसार सीतामऊ एक स्वतंत्र देशी राज्य मान लिया गया और वहाँ के नरेश की ग्यारह तोप की सलामी का अधिकार स्वीकार किया गया। महाराजा राजसिंह जी के राज्यकाल में ही उत्तरी भारत में लोमहर्षक सिपाही-विद्रोह की आग भड़क उठी थी। सीतामऊ-नरेश ने इस अवसर पर ब्रिटिश सरकार की पूर्ण सहायता की। सरकार ने भी कृतज्ञता-स्वरूप महाराज को प्रायः दो सहस्र की बहुमूल्य ख़िलत की भेंट की। महाराजा राजसिंह जी के अभयसिंह जी और रत्नसिंह जी नामक दो राजकुमार थे। दुर्भाग्य से महाराज के जीवनकाल में ही इन दोनों राजकुमारों का स्वर्गवास होगया।

राजा राजसिंह जी बड़े ही कुशल शासक थे। इन्होंने प्रायः ८० साल की अवस्था पाई। सीतामऊ-राज्य के उन कई भागों पर उन्होंने फिर से पूर्ण शासन अधिकार स्थापित किया जो पहले कुछ शिथिल-सा हो गया था। ललित कलाओं पर भी इनका बड़ा प्रेम था। गुणियों एवं कवि-कोविदों का ये दिल खोलकर सम्मान करते थे। राजा राजसिंह कविता-मर्म के अच्छे जानकार थे। स्वयं भी कविता करते थे। खेद है अब इनके सब छंद सुलभ नहीं हैं। ढूँढ़ने पर केवल दो छंद मिल सके हैं जो यहाँ उद्धृत कर दिये गये हैं। वृद्धावस्था में इनको पुत्रशोक से बड़ा कष्ट हुआ। 'नटनागर-विनोद' के रचयिता राजकुमार रतनसिंह इन्हीं के पुत्र थे। पिता के साहित्यानुराग का इन पर पूरा प्रभाव पड़ा था। राजा राजसिंह जी के प्राप्त दोनों छंद जो यहाँ पर दिये जाते हैं सूचित करते हैं कि वे अपनी छाप "नृपराज" रखते थे :—

(१)

कुकुम बुन्द लगाय ललाट पै, हार जू हार धरे हिय पैं।
वह मोतिन माँग सँवारि सखो, लगि खंभ निरंभ खरी पिय पैं ॥
छवि देखि यहै 'नृपराज' कहैं, सु यहै दुख सौतिन के जिय पैं।
हिय वाहि चहै जु चहै न कछू, दिन रैन रहै पिय वा तिय पैं ॥

(२)

सजनी समुझावत वा तिय को तोहि पीय बुलावत प्रेम अती।
बिन तेरे जिया अकुलात महाँ, अति आतुर ह्वै चित चोप रती ॥
चलि बेगि कहाँ सतराइ रही, उत सेज बिछी सुनु मानवती।
'नृपराज' कहैं रसरीति बढ़े, पिय सों नटु ना घट जात घती ॥

महाराजा राजसिंह जी के स्वर्गारोहण के बाद उनके पौत्र, राजकुमार रतनसिंह जी के पुत्र—राजा भवानीसिंह जी राजगद्दी

पर बैठे। इनके कोई पुत्र न था इसलिए इनके देहावसान के अनंतर इसी शाखा की निकटस्थ उपशाखा के कुमार गद्दी पर बैठे।

२—राजकुमार रतनसिंह जी

महाराजकुमार रतनसिंह जी का जन्म संवत् १८६५ के चैत्र मास में हुआ था। इनकी माता का नाम श्री १०८ श्री चावड़ी जी श्री राजकुँवरि जी था। जन्मपत्र में जो लग्न-चक्र दिया है वह इस प्रकार है:—
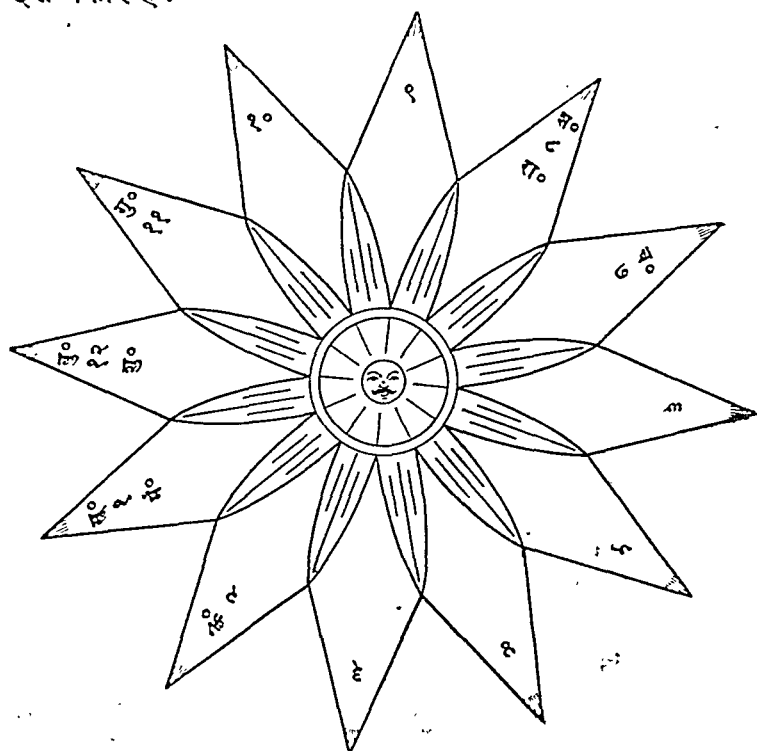
राजकुमार रतनसिंह जी की बाल्यकाल की अधिक बातें विदित नहीं हैं। परन्तु यह बात प्रसिद्ध है कि इनके प्रारम्भिक

जीवन का बहुत समय व्यायाम और आखेट में बीता। इनके शरीर में खूब पराक्रम था। मुगदर फेरने का इनको बहुत चाव था। पचीस वर्ष की अवस्था तक इन्होंने पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य की रक्षा की। सीतामऊ में इनके शारीरिक बल की अनेक बातें विख्यात हैं। कहते हैं कि कच्चे रुपये पर उभड़े हुए अक्षर ये अँगूठे से मलकर बिगाड़ देते थे और उसे अँगुलिया से दबा कर टेढ़ा भी कर देते थे। कैसी भी तलवार हो एक ही हाथ से बकरे के दो टुकड़े कर डालते थे। शिकार में एक बार इन्होंने एक बहुत बड़ा छः मन का वज़नी सुअर मारा, साथ के शिकारियों में से अकेले किसी एक आदमी के उठाये वह नहीं उठता था। इन्होंने अकेले ही उसको उठाया और कुछ दूर तक लिये चले गये। एक बन्दूक़ की नाल को इन्होंने अपने हाथ से तोड़ डाला था। निशाना भी ये बहुत अच्छा लगाते थे। कई बार अँधेरे में शब्द सुनकर भी इन्होंने लक्ष्य को मार गिराया। जिस स्थान पर ये खड़े होकर मुगदर फेरते थे वहाँ पत्थर में इनके पैरों के चिह्न बन गये थे। शरीर-बल के अनुसार ही इनका भोजन भी था। प्रसिद्ध तो यह है कि ये प्रतिदिन प्रायः सवा चार सेर सूखा मेवा चाब डालते थे। इनका विवाह पचीस वर्ष की अवस्था में हुआ था। इनकी गुरुभक्ति का हाल भूपदास के वर्णन में मौजूद है। पितृ-भक्ति भी इनकी बहुत बढ़ी चढ़ी थी। पितृ-चरणों की वंदना किये बिना ये कोई काम न करते थे। जब बहुत बीमार हो जाते और चलने-फिरने की शक्ति न रहती तब पिता की चरण-पादुका अपने लेटने के स्थान में रखवा लेते और उनके दर्शन में पिता के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करते थे। इनकी घ्राण-शक्ति का विकास भी अद्भुत बतलाया ज़ाता है। कई इतर एक में मिलाकर सुँघाने पर ये बतला देते थे कि इसमें अमुक अमुक इत्रों का संमिश्रण है। इसी प्रकार कई कुओं के पानी की परीक्षा की बाबत

भी कुछ बातें प्रचलित हैं। इनके रसनास्वाद और घ्राण (गंध) के परिचय की एक अद्भुत कथा सुनने में आती है। एक बार रात में इन्होंने बकरे का मांस खाया। आपको जान पड़ा कि मांस में मेथी की पत्ती पड़ गई है। रसोई-घर में पता लगाने से मालूम हुआ कि मेथी का व्यवहार नहीं किया गया है। जब बहुत छान-बीन की गई तो पता लगा कि मारे जाने के पहले बकरे ने मेथी की पत्ती खाई थी। शासन-व्यवस्था का अधिक काम इन्हीं के सुपुर्द था और उसको ये पूरे तौर से निबाहते थे। सीतामऊ के राज्य-शासन-संबंधी एक प्रश्न को सुलझाने के लिए इनको एक बार ग्वालियर की यात्रा करनी पड़ी थी। ग्वालियर में उस समय महाराजा जयाजीराव का शासन था। जयाजीराव इनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। शासन-संबंधी समस्या भलीभाँति सुलझ गई। इतना ही नहीं, जयाजीराव ने इनसे बहुत आग्रह किया कि ये ग्वालियर में कोई ऊँचा पद ग्रहण करें और वहीं रहें, परन्तु इन्होंने यह बात स्वीकार न की। इस यात्रा के सिलसिले में महाराजकुमार आगरे गये फिर वहाँ से आगे बढ़ कर गंगा-स्नान किया और फिर ब्रजमण्डल का भी परिभ्रमण किया। श्रूपदास जी को अपने एक पत्र में इन्होंने इस यात्रा की बहुत-सी बातें लिखी हैं। इनके एक और भाई अभयसिंह जी थे। अभयसिंह जी अबजीलाल साहब कह कर पुकारे जाते थे। प्रायः बीस वर्ष की अवस्था में ही घोड़े पर से गिर कर इनका देहान्त हो गया। भ्रातृ-वियोग से राजकुमार रतनसिंह जी बहुत दुखी हुए। आमोद-प्रमोद के सब काम छोड़ दिये। राजगद्दी पर विराजने की लालसा इन्होंने कभी नहीं की। प्रसिद्ध है कि यह कहा करते थे कि मेरा देहान्त पिता के जीवन-काल ही में होगा और यदि ऐसा न भी हुआ तो भी मैं गद्दी पर न बैठूँगा, बरन् भगौर में जाकर रहूँगा और वहीं स्वच्छन्दतापूर्वक

भगवद्भजन करूँगा। गद्दी पर भँवरभवानीसिंह जी बैठेंगे। दुर्भाग्य से उनकी यह भविष्यद्वाणी ठीक निकली और पिता के सामने ही उनका देहान्त हो गया। इनकी धर्मपत्नी का देहान्त इनके जीवन-काल में ही हो गया था। बाबा श्रूपदास पर इनकी प्रगाढ़ भक्ति थी। राजकुमार रतनसिंह जी विष्णुसहस्रनाम का पाठ बराबर करते रहते थे। महाराजा साहब के साथ जब कभी इनको चलना पड़ता तो ये सदा सरदारों के साथ चलते थे, उनसे अलग नहीं। दीवान हुलासराय में और इनमें बड़ा प्रेम था और दीवान साहब को इन्होंने अपना 'दीवाने उश्शाक़' दिया था, जब कभी ये घोड़े की सवारी करते तो जिरहबख़्तर, कलँगी इत्यादि ज़रूर धारण किया करते थे। संवत् १९२० में इनका देहान्त हुआ। इस प्रकार रतनसिंह जी केवल पचपन वर्ष जीवित रहे। इनके शासन-सम्बन्धी और व्यक्तिगत जीवन की जो बातें मालूम हो सकीं उनका ऊपर संक्षेप में उल्लेख कर दिया गया है।

जीवन के इस पहलू को छोड़कर अब हम उनके जीवन के दूसरे पहलू का वर्णन करेंगे। यह पहलू कलामय है। चित्र-कला, काव्यकला एवं संगीत-कला, जिसमें वाद्यकला भी सम्मिलित है, इनके मनोरञ्जन की विशेष सामग्री थीं। हमने सीतामऊ राजकीय चित्र-भाण्डार में इनके समय के बहुत-से सुन्दर चित्र देखे हैं। इन चित्रों के नीचे कहीं बिहारीलाल के दोहे हैं, कहीं देव जी के छंद हैं, कहीं अन्य कवियों की रचनायें हैं तथा कहीं स्वयं इनके बनाये छंद हैं। मालूम नहीं, चित्रकार को छंदविशेष का भाव देकर चित्र बनवाया गया है अथवा भावानुकूल जानकर बाद को छंद लिखा गया है। 'नटनागर-विनोद' में इनके बनाये जो अनेक पद दिये हैं उनसे इनकी संगीतकला-अभिज्ञता का बोध होता है। महाराजकुमार को सितार बजाने का बड़ा शौक़ था। वे विष्णुसहस्रनाम का पाठ भी करते रहते थे और साथ

साथ सितार भी बजाते जाते थे। आगे हम इनके साहित्यिक वातावरण का दिग्दर्शन करावेंगे।

३—बाबा श्रूपदास

मालवा-प्रान्त में श्रूपदास नाम के एक दादूपन्थी साधु थे। ये संस्कृत के बहुत अच्छे पण्डित थे। साहित्य-शास्त्र में भी इनका अच्छा प्रवेश था। साधु होने के कारण धर्म-शास्त्र में तो ये पारंगत थे ही। बाबा जी कवि भी थे। "पाण्डव-यशेन्दु-चन्द्रिका" ग्रंथ इन्होंने बड़े परिश्रम से बनाया और उसकी कविता भी अच्छी है। रतलाम, सीतामऊ और सैलाना दरबारों में इनकी बड़ी प्रतिष्टा थी। बाबा जी को राजनीति में भी दख़ल था, इनकी कविता कुछ रूखी होती थी। सीतामऊ के महाराज कुमार रतनसिंह जी इनको अपना गुरु मानते थे। इन पर उनकी बहुत अधिक भक्ति थी। हिन्दू-धर्म-शास्त्र के अनुसार ईश्वर का एवं गुरु का पद बराबर है। इनके प्रति राजकुमार की श्रद्धा का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वे श्रूपदास जी को ईश्वर का अवतार मानते थे। राजकाज करते समय भी बाबा जी को अपने बराबर आसन देते और उनकी चरणरज को मस्तक पर धारण करते थे। राजकुमार के सम्पूर्ण जीवन पर श्रूपदास जी का बहुत बड़ा प्रभाव था। जब श्रूपदास जी सीतामऊ से बाहर रहते तब इनके और श्रूपदास जी के बीच में पत्र-व्यवहार जारी रहता था। अधिकांश में यह पत्र-व्यवहार पद्य-मय होता था। इस पत्र-व्यवहार को पढ़ने से बड़ा मनोरञ्जन होता है और राजकुमार की प्रगाढ़ गुरु-भक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। "नटनागर-विनोद" ग्रंथ के आदि में कवि ने ईश्वर

की वन्दना न करके श्रूपदास जी की ही वंदना की है। क्योंकि वे उनको ईश्वर का अवतार मानते थे। श्रूपदास जी निर्भीक स्पष्टवक्ता थे। बूँदी के प्रसिद्ध चारण कवि सूर्यमल्ल जी ने जब इनसे वंश-भास्कर ग्रंथ पर सम्मति माँगी, तो बाबा जी ने सूर्यमल्ल जी को स्पष्ट लिख दिया कि आपका ग्रन्थ सुन्दर है परन्तु नर-काव्य होने के कारण उसका वैसा आदर नहीं हो सकता जैसा किसी ईश्वर-सम्बन्धी काव्य-ग्रन्थ का। कहते हैं सूर्यमल्ल जी कुछ कुछ मदिरा-पान से भी प्रेम करते थे एवं पुराने कवियों के कुछ निंदक भी थे। श्रूपदास जी ने चारण जी के इन दोनों कामों की भी निंदा की। सूर्यमल्ल और श्रूपदास के बीच में जो पत्र-व्यवहार हुआ है वह भी राजकुमार और श्रूपदास के पत्र-व्यवहार के साथ सीतामऊ के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है। जब महाराजकुमार का स्वर्गवास हुआ तो श्रूपदास जी सीतामऊ में न थे। कुमार जी के पिता ने बाबा जी को इस दुखद घटना की सूचना दी। इस पत्र-व्यवहार को हम ज्यों का त्यों आगे उद्धृत करेंगे। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि जब बाबा जी ने यह समाचार सुना तब सहसा उनके मुख से निकला कि—रतना ने बड़ी जल्दी की, मैं भी तो साथ चलने को तैयार था। कहते हैं कि कुछ ही दिनों के बाद बाबा जी का भी देहांत हो गया। राजकुमार अपने पत्र-व्यवहार में श्रूपदास जी को जो कोई पत्र भेजते थे उसमें अपने आपको सदैव "रतना" सम्बोधित करते थे। आज न तो महाराजकुमार रतनसिंह हैं और न बाबा श्रूपदास ही परन्तु जब तक हिन्दी-संसार में "नटनागर-विनोद" की सत्ता है, तब तक गुरु-शिष्य के इस अनन्य प्रेम की बात भी अचल है। साधारणतया लोग श्रूपदास जी को स्वरूपदास अथवा सरूपदास कहकर सम्बोधित करते थे।

गुरु-शिष्य के बीच जो अनोखा पद्यमय पत्र-व्यवहार हुआ है वह सब एक पुस्तक के रूप में सीतामऊ में मौजूद है। नट-नागर-विनोद के प्रारम्भ में श्रूपदास जी की स्तुति जिन पद्यों में है वे उसी पत्र-व्यवहार में के एक पत्र के अंश हैं। एक बार श्रूपदास जी ने राजकुमार जी को लिखा था कि आप ईश्वर-सम्बन्धी विशेषणों का प्रयोग मेरे प्रति क्यों करते हैं। इस पर राजकुमार ने उत्तर दिया कि ईश्वर और गुरु में जब कोई भेदभाव नहीं है और आप मेरे गुरु हैं तब मैं आपके लिये वैसे विशेषणों का प्रयोग क्यों न करूँ। इस पर श्रूपदास जी निरुत्तर हो गये और अपने पत्र में लिखा कि मैं हार माने लेता हूँ। तुम्हारी जैसी इच्छा हो लिखो।

भूमिका के कलेवर के बढ़ जाने का भय होते हुए भी हम गुरु-शिष्य के इस पद्यमय पत्र-व्यवहार के कुछ अंशों को यहाँ उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते हैं। ऊपर जो बातें हमने लिखी हैं उनको पढ़कर कदाचित् पाठकों का कौतूहल भी उक्त पत्र-व्यवहार के पढ़ने का हो। इसलिए आगे कुछ आवश्यक अंशों का संकलन किया जाता है। स्थल-संकोच के कारण कुछ पत्र पूरे दिये जायँगे और कुछ का केवल आवश्यक अंश।

(१) बाबा श्रूपदास जी का पत्र

"स्वस्ति श्रिय सियापुरी सौष्टवत सीखी जिन,
आप तनु संजुत ह्वै मोहनी अतन तैं।
रतनपुरी तैं श्रूपदास की आसिष बाँचौ,
यहाँ है अनंद तुम रहियो जतन तैं॥
श्रवन मनन और कथन प्रकार ज़था,
तथा प्रीति राखियो अनादिक चतन तैं।

सत्रु मित्र गुर्वादिक यूहीं मोल लैवो करौ,
रतनकुमार सुद्ध बायक रतन तैं ॥

कोइक बात है कहन की, कोइक मनन की वात ।
सब उपमा हित लिखत हौं, लौकिक तैं न डरात ॥
कोई बखत यूँ लिखन को, मैं प्रतिखेधहि कीन ।
रतनकुवँर तुम लेत हौ, नित नित उपज नवीन ॥
रतनकुवँर यहि रीति सों, हम तौ मानी हार ।
तुम गुरु मिसि करिबो करौ, हरि की स्तुती हजार ॥
दीप व्योम निधि चन्द्रमा, बाँचहु संमत बीर ।
स्रावन असिता प्रतिपदा, धरहु मास दुय धीर ॥

तथा भादवा सुदी १० सूं लगाय बारस तेरस ताँ सवारी आई चाही जै तथा पारमी को अवकास होय तो दसमी के दिन भलाई अठैं, आंप युगै भाव राखैं ज्यासूँ जथा योग्य श्रीरस्तु कल्याणमस्तु ॥"

(२) महाराजकुमार रतनसिंह जी का पत्र

"स्वस्ति श्री राजत रत्नथान—जहँ संत सिरोमनि मुनि महान ।
उपमा अनेक लायक उदार सुभ श्रेष्ठ गुनन के हौ अगार ।
विदुषावतंस विद्यानिधान अज्ञानतिमिरि हरि अंशुमान ।
मद मोह छोह छल दहनहार भवसागर तारन कर्नधार ।
अति पावन पतितन पद मृनाल जस विदित दहत दुख द्वंदजाल ।
वासिष्ट व्यास से जग बिख्यात—उपकार करन पर पारिजात ।
उपमा अनेक लायक अनूप—श्री श्री श्री श्री गुरुदेव श्रूप ।
सत सहस कोटि श्री राजमान भय हरन करन सुख के भवान ।
लेखंत सियापुर तैं सुधाम कृत रत्नसिंह कोटिक प्रनाम ।
इत आनंद श्री गुरु महामानि उत चहै रावरी खबर जानि ।

बीते बहु बासर...(सुधि न लीन)–दिल रहत दास बिन दरस दीन ।
बिन बास मधुप जल छीन मीन घन बिना चित्त चातक मलीन ।
कीजै अब आज्ञा कृपानाथ सिविका जुत पहुँचै सर्वसाथ ।
दीजिए दरस दीनन दयाल कीजिए निपट किंकर निहाल ।

उपालंभ ।

पटपदी:—भूप गुरु क्यों बिसरे निज बान ।

तुम ठाकुर हम दास जन्म के, कित खोई पहिचाँन ॥
बरसा अंत उमेद अधिक थी, सोऊ करी न काँन ।
अरजी पत्र लिख्यो थो ह्याँ तें, सो तुम पढ्यो सुजान ॥
ता उत्तर बिच आप लिख्यो यूँ, मास उभय लों आन ॥
सो हम अवधि निरखि सकुचत हैं, अटक्यो प्रकट पयान ।
क्यों अरुची मानी दासन ते, यह नहिं रीति महान ॥
अब सोइ मिती तिथी लिखि दीजै, हाजिर होय सुयाँन ।
आये बिना अबसि दुख इत को, नाहिं न मिटत निदान ।
नटवर भूप लखे बिन निस दिन, नैन रहे हठ ठानि ।
मोह जनित तम तबहि मिटैगो, दरसें श्री गुरु भाँन ॥"

श्री गुरु दरसन आस, बहुत सी रहत दास के ।
श्री गुरु दरसन आस, यहाँ सब आँब खास के ॥
श्री गुरु दरसन आस, प्रजा राखत अति पावन ।
श्री गुरु दरसन आस, लघू दीरघ मन भावन ॥
सब आस करत पद कमल की, नैन ध्यान नित रहत मय ।
जय जयति भूप तारन तरन, जय जय जय गुरुदेव जय ॥१०॥

इत सब आप प्रताप तैं, कुसल रहत महाराज ।
त्यों ही चाहत आपकी, किंकर सकल समाज ॥११॥

"तुम गुरु मिस करिबो करो, हरि की स्तुती हजार ।"

जाको उत्तर—

हरि गुरु दोऊ एक हैं, दोय गिनैं सो दुष्ट ।
सब मत वेद पुरान सों, पूँछ कीजिए पुष्ट ॥
याते मैं तो एक ही, समुझि लिखत महाराज ।
ज्यों चाहो त्यों ही गिनो, श्री गुरु सहित समाज ॥
कै हरि की या गुरन की, बनी स्तुती की बात ।
निहचै मेरी हानि ना, है मोदक दोऊ हात ॥
ज्यों समुझत त्यों ही लिखत, समझ लिखन नहिं दोय ।
स्याम रंग गुरु रँगि दयो, कौंन मिटावै धोय ॥

"हम तौ मानी हार ॥" ताको उत्तर—

आप न हारो गुन सुनत, मैं हारों गुन गात ।
पार लहों मैं कौन विधि, अकथ अूप विख्यात ॥
हीरा गिर जू राम जुत, पहुँचै प्रीति प्रनाम ।
रहत अहर निसि लालसा, दरसन की सुखधाम ॥
श्री रवितनया दास जू, दूसर दास मुकुंद ।
तीसर साधूरास जुत, बँचहु जयति ब्रजचंद ॥
संबत मिती विख्यात है, लिखन जोग्य नहिं बात ।
ऐसे हीं मन समुझि कैं, मौंन गही मैं तात ॥
चाकर कों कछु चाकरी, लिखिए कृपानिवास ।
अहो भाग्य मानैं अधिक, दीनबंधु निज दास ॥
जलधारा अति जोर सूँ, बूठो अति बिस्तार ।
सुदी असाढ़ त्रयोदसी, पूनम सूँ अवहार ॥
साख ऋषी अति सहस रस, परमेस्वर परताप ।
राज प्रजा सारा रहत, बिगत तीनहूँ ताप ॥
श्रावण बदी एकादसी, अरू द्वादसी ओर ।
ताल पाल पूरण तुरत, बरस किया बरजोर ॥

——

(३) बाबा रूपदास जी का पत्र

स्वस्ति श्री सियपुरी सुथानक, राजक चर जहाँ राजै।
परम वरन चहुँ धरम परायन, भाँति भाँति गुन भ्राजै॥
सुभ कृत तुमसे करत सामना, क्यूँ बाढ़ै तित करनी।
सुनै तिनहिं उपदेस करत सी, हृदय तिमिर की हरनी॥
रतन वंस तैं रतन नाम तैं, रतन बुद्धि तैं रूरे।
विद्या रतन जनक जननी के, पुन्य रतन गुन पूरे॥
वद तन रतन मधुर मुख बानी, पर प्रकास जड़ पाहन।
स्वै प्रकास चेतन तूँ सहजहिं, ज्ञान वचन अवगाहन॥
लाल सरव उपमा तुहि लायक, सत चित आनंद सोहै।
तामइ दास भाव विच तत पर, मुनि जन को मन मोहै॥
रतनपुरी तैं रूपदास कृत, बाँचहु तात बिचारहु।
श्री हरि सुमिरन आसिष संजुत, धरम रीति चित धारहु॥
इत आनंद फिरि पत्र आपको, बाँचि कुसल सुख बाढ़्यो।
किंचित फिकिर वियोग सुजन को, कढ़त नैक नहिं काढ़्यो॥
सेवक के अवगुन को स्वामी, रतन याद नहीं राखै।
तातैं सेवक भये मदोमत, करैं कछू कछु भाखै॥
संमत दीप व्योम निधि शशधर, वदि असाढ़ तिथि सातै।
छियावार यह नाथ लिख्यो छंद, त्रतिय जाम वजि तातै॥

---

(४) राजकुमार रतनसिंह जी के पत्रों के संकलित अंश—

आपनो कर क्यों विसारो नाथ।
मैं नहिं लिखत कहत जग सारो, गुप्त नहीं गाथ॥
तुम तौ प्रीति रीति प्रति पारो, हम नहिं लायक प्रीति।
अपनी करी मिटावत नाहीं, यहै वड़ों की रीति॥

दास जानि कै दया न कीनी, कहौ रीति यह कैसी।
ऐसी लिखत चित्त अकुलावै, है यह रीति अनैसी॥
कै चित भयो कठोर रावरो, कै कोउ लागे कान।
जैसी लिखत करत वैसी ना, कौन गही यह बान॥
दासन मैं अपराध होय तौ, ऐस आप दँड दीजै।
हम हैं कुटिल कूर मति कारे, तऊ नाथ सुधि लीजै॥
बरषा सीतकाल दोऊ बीते, ग्रीषम अब नियरायो।
कोकिल मधुप केकिमिलि गुनियत, ताको आगम गायो॥
निसि अरु दिवस बिषम बीतत है, देव तरस अब कीजै।
नटवर अूप-रूप की झाँकी, दीनबंधु अब दीजै॥

हमैं कब दीन जानि दरसौगे।
सूकत प्रान हमारे पौदा, प्रीति घटा बरसौगे॥
इत उत की सुधि दै छद द्वारा, बिरहझार झरसौगे।
हमकों दुखी छाँड़ि कै इतकौं, आपु वहाँ हरसौगे॥
छिन घटि लौं घटि जात द्यौस लौं, द्यौस मास लौं जावै।
करसत प्रान विरह सरसत हैं, यह कैसे मन भावै॥
सिष्यन पर सम भाव रावरो, रहै निरंतर छायो।
कीजै सोई कृपानिधि जाहिर, सो सारै जग गायो॥

राग इंदु निधि आतमा, अव्द अंक परमान।
असित पच्छ नौमी तिथी, फाल्गुन सौम्य सुजान॥

बिसारें अब न बनैगी नाथ।
तुम हीं ईस दास मैं तुम्हरो, है जाहिर यह गाथ॥

या विच भेद होय कारन का, वन्यों थेट तैं साथ ।
नेह निभावन पावन सेवग, सहज तिहारे हाथ ॥
दरसन देन विलंव करी क्यों, इतनी श्री समराथ ।
मोसे दास वहुत हैं तुम कूँ, मेरे तुम विख्यात ॥
याकी साख भरत सारो जग, कथौं झूँठ नहिं काथ ।
सव समान हैं दास रावरे, एक भये क्यों रे वाथ ॥
वारंवार विनय मेरी यह, करौं नाय पद माथ ।
नटवर रूप अूप की झाँकी, देहु अमोलक आथ ॥

कवन हित दासन को दुख दीनों ।

माफ कियो चहिये करुनानिधि, कछु अपराध जु कीनो ॥
आप अमाप सकल जग जानत, मैं वालक वुध हीनो ।
तिन पर छोभ चाहिये कैसे, है यह पंथ नवीनो ॥
मेरे नाथ और को तुम विन, इतनी हू नहिं चीनो ।
एक हि पती देव नहिं दूजो, है मारग यह जानो ॥
मेरी रीति यही चलि आई, मेरो मत यह पीनो ।
नटवर अूप तुरत लिख दीजै, आवन छदरस भीनो ॥

दया करि दासन की सुधि लीजै ।

चाहत नहीं और कछु तुम सूँ, देव दरस इत दीजै ॥
श्री गुरु हरी दोय विन मेरे, तीजे मन न पतीजै ।
कोटि उपाय स्याम कामरिया, और रंग नहिं भीजै ॥
वार वार है यहै वीनती, श्री गुरु स्रवनन पीजै ।
मो मन भयो वज्र तैं करकस, पदरज पाय पसीजै ॥

मो चित की मत भई बावरी, और कहाँ मत धीजै।
सब बिधि सिटै कलेस दास को, सो अब क्यों नहिं कीजै ॥
बिनय पत्र बिच लिखौं बीनती, भो गुरु स्रवन करीजै।
नटवर श्रूप-सुधा मिलि जावै, सेवक कै दुख छीजै ॥

---

(५) राजा राजसिंह और श्रूपदास का पत्र-व्यवहार—

(कुमार रतनसिंह के स्वर्गवास के समय)

"श्री महाराज कुँवार के देवधाम पदारण के वकत सोरठो श्री गुरु स्वरूप-महाराज रे हजूर फुरमायो :—

सोरठो—यूँ श्री गुरु अठजाम, चित नित तव चरणां चहै।
रतना ऐसत राम, अनदाता तुह लों अवें ॥
[सं०, १९२० का माघ विद ३ मंगल की अर्धनिसि]

श्री राजकुँवार के देवलोक पधार्‌यां बाद बंसाअवतंस श्री मन्महाराजाधिराज पत्र श्री गुरु स्वरूप महाराज रे नाम चिंता नहीं करण रे मुदे लिखियो जिका ए जवाब गुरू महाराज भेज्यो जी छंद में सोरठा फुरमाय खास आपएँ लिख्यो सोः—

सोरठा—असी बरस लग वेस, रुज लूट्यो चेतन रतन।
तहों उलटो मोहिं उपदेस, तूँ लिखवे फतमालतण ॥
*भैंर रतन कुल भूप, मिलि दोनूँ यक रात मैं।
इल सुख तज्या अनूप, कुण दुख किण आगे कहा ॥
—श्री हरि समर्थ छै"

---

* रतलाम के श्री भैरवसिहं जी का तथा श्री रतनसिहं जी "नटनागर" का एक ही रात में स्वर्गवास हुआ था और दोनों ही श्रूपदास जी के शिष्य थे।

४—सूर्यमल्ल जी

एवं

अन्य कवियों का सत्संग ।

नटनागर जी के जीवन पर बाबा श्रूपदास जी का कितना प्रभाव था इसका उल्लेख हो ही चुका है। इनके अतिरिक्त राजकुमार जी अन्य किन साहित्यिकों के सम्पर्क में रहे इसका ज्ञान भी आवश्यक है। इन साहित्यिकों में विशाल वंश-भास्कर ग्रंथ के रचयिता राव सूर्यमल्ल जी का प्रमुख स्थान था। अपने समय में, राजपूताना एवं मालवा आदि प्रान्तों में सूर्यमल्ल जी की विशेष प्रतिष्ठा थी और वे सबसे बड़े कवि माने जाते थे। सीतामऊ-दरबार में भी उनकी प्रतिष्ठा थी। इस राज्य में भी वे एक बार पधारे थे। राजकुमार रतनकुमारसिंह जी से उनकी विशेष घनिष्ठता और प्रेम था। पत्र-व्यवहार भी होता रहता था। हर्ष की बात है कि सीतामऊ के राजकीय पुस्तकालय में इस पत्र-व्यवहार की भी नक़ल मौजूद है। इसके पढ़ने से ज्ञान पड़ता है कि राजकुमार जी समय समय पर कवि जी के पास भेंट-स्वरूप कोई न कोई वस्तु भेजा करते थे। कभी इतर भेज दिया, कभी तलवार भेज दी, कभी सितार भेजे। कवि जी बड़े आदर के साथ इन प्रेमोपहारों को स्वीकार किया करते थे और अपने पत्रों में स्वीकृत सूचना के साथ-साथ राजकुमार की प्रेषित वस्तुओं पर प्रशंसात्मक कविता भी लिख भेजते थे। पढ़ने में श्रूपदास जी के पत्र-व्यवहार के समान यह भी परम मनोरंजक है। जिन दिनों कवि जी सीतामऊ पधारे थे उन दिनों राजकुमार साहब राज्य के अश्वशाला के घोड़ों का निरीक्षण कर रहे थे। राव सूर्यमल्ल घोड़ों के गुण-दोषों का अच्छा ज्ञान रखते थे ऐसी

दशा में निरीक्षण के समय में उन्होंने कवि जी को भी अपने साथ ले लिया। सूर्यमल्ल जी ने बाईस घोड़ों को बहुत अच्छा बतलाया। राजकुमार ने ये सभी घोड़े कवि जी को भेंट कर दिये। राजकुमार की इस उदारता पर कवि जी बहुत प्रसन्न हुए और औदार्यसूचक बहुत-से छंद बनाये।

सीतामऊ में नटनागर जी की अपनी एक निज की साहित्य-गोष्ठी थी। इसमें श्री लक्ष्मीराम जी, गुरुभाई शिवराम जी, श्री चण्डीदान जी, दयानिधि जी, जमनादास जी, हरीराम जी, मुकुंददास जी, मानसिंह जी, कुन्दन जी, पुरुषोत्तम जी, आदि कवियों का प्राधान्य था। इसके अतिरिक्त कुशलदास एवं श्याम-राव आदि प्रतिष्ठित कवि भी यहाँ प्रायः आया करते थे। सूर्यमल्ल जी के पत्र-व्यवहार एवं अन्य आश्रित कवियों की कविता के नमूने देखने के लिए पाठकों का कौतूहल स्वाभाविक ही है, अतः वैसी कुछ सामग्री आगे उपस्थित की जाती है :—

सूर्यमल्ल जी का पत्र

श्रीमहाराजकुमाररत्नसिंहकरकमलावलम्बिनीयं पत्री मधु-करी—

स्वस्तिश्रीजानकीपुरस्थितेषु प्रीतिप्रतिपादकसौजन्य सुमन-इन्दिरेषु, कलिकालप्रचण्डपाखण्डतरण्डतिमिङ्गिलेषु सुहृत्सारसो-ल्लासनमार्तण्डमतल्लिकेषु, खलखण्डनख्यातमूढजगत्प्रवाहप्रति-लोभवीणावादनविनोदसटासम्भारत्रस्तीकृतगन्धर्वाप्सरोगणगजेषु, साहित्याकूपारक्रमणकैवर्तकमोदपारिजातक्षात्रधर्मक्षमेषु, मिलन-

सम्भाषणेन विनैव तद्गुणाभावत्वेपि परदेशस्थपुरुषप्रीतिप्रवर्द्धक राजकुमाररत्नसिंहेषु विन्दुमतीपुरीतः श्रीमद्रामपदपद्मपराग-आघ्राणपण्डितमरन्दामोदमुदितमनोमधुलिण्भीषणमिहिरमल्लवि-हिताशिषः समुल्लसन्तुतरां क्षेममत्रभावत्कमनुदिनमेधमान-मीहे भवद्भिः कृपाणी कालजिह्वा वीणायुगं च प्रेषितं तदपि प्रीत्या समातम्मयापि भवद्भोग्यवस्तुप्रेषणाक्षमेण किञ्चित् प्रेषितन्तत्रभाषयावोद्धव्यम् ।

सितार श्रेष्ठ वजाने कवित्त—

मालव मही के मुख्य मंडन महान मति,
रतनकुमार हम कौलौं रटिवो करैं ।
देखें तोहि समर सुमार ह्वै सचीहू पति,
धर्मपै पचीहू कुलटा लौं कटिवो करैं ॥
आरोहावरोह मुर्छना के मेल मान प्रति,
गान प्रति तान के वटाऊ छटिवो करैं ।
तेरी वल्लकी के वाजैं लैं को भूलिवे के भय,
मेनका को मन नचिवे को नटिवो करैं ॥

चिन्तामणिरत्न सों उपमा को कवित्त—

देखे जौंहरी ह्वै हम रतन रसा के मनि,
इन्द्रनील मानिक प्रवाललाल भारी है ।
चूनी चन्द्रकांत पन्ना लसुन पिरोजे पद्म,
राग मोल महँगे जिहाँन माहिं जारी है ॥
वहुरि विराट जव रार कवि से सरोच,
मान रविकाँत हू प्रकासन प्रकारी है ।
रतन रजीले राजसिंह के सपूत तापैं,
चिंतामनि कैसी चारु चमक तिहारी है ॥

कीर्तिवर्णनम्—

मालव के मुकुट कुमार रतनेस तेरो,
जस वहु रूप स्वांग आनत नटान के।
व्याल ह्वै धरा को धूत धारै धवलीकरि,
मराल ह्वै मुरैत वोझ ब्रह्मा के विमान के॥
हिमकर ह्वै कै भवभाल बनि वैठो वीर,
कंबु ह्वै कै अधर अँगोछै भगवान के।
मल्ली मालती ह्वै छत्रधारिन को छोगो बनै,
मोती ह्वै मिजाजी मुख चूमै महिलान के॥

कृपाणी भेजी ताको कवित्व—

कोचन को काढै कपरे को करतरी ज्योंलै,
पापिनी पटा के पलटा मैं पत्रपाल कों।
रिपुन के रकत रहै ज्यौं रागि नीसीनो ती,
नागिनी सी निंदै कालिका के करवाल कों॥
भेजी तैं भवानी सी कृपानी खल खानी रैन,
मानी जो महे[illegible]हिं चढ़ावै मुंडमाल कों।
पल चर पोस धन कोस तैं सरोस कढ़ी,
चंचला सी चमकि कलेवा देति काल कों॥

आशीर्वादात्मक कवित्व—

आसिष हमार तैं कुमार रतनेस तुम,
हरी जिम हेतुन को हृदय हर्‍यो करो।
तेज में तपाय धमनी दै बेग कूट रन,
धन असि लैकैं घाट अरिन धर्‍यो करो॥
धर्म माहिं धारो धुर दाहिनों जुधिष्ठिर को,
भक्ति भावती मैं अंवरीष तैं अर्‍यो करो।

संगीत के सिंधु मैं समेटो तान संकर तैं,
बिद्या मैं बृहस्पति तैं बाद बिथुर्‍यो करो ।।

सितारी दोय भेजीं तिन के कवित्व—

सुंदर सितारी द्वै पठाई रतनेस जिन्हैं,
वीर लै कै बाजे मैं बटा से उछटाऊँ मैं ।
जाके आगे रागन मैं रङ्ग राचिबे को राखि,
राचिबे कों नारि नटबर की नटाऊँ मैं ।।
भारती की दरप हटाऊँ द्रुति ईस की,
उछाह उलटाऊँ हँसी हूहू को हटाऊँ मैं ।
झुकि झुकि झूमि झूमि झारि मिजराफन को,
घूमि घूमि घमण्ड घृताची को घटाऊँ मैं ।।

सूर्यमल्ल जी के अन्य पत्रों से संकलित—

सुंदर सितारी द्वै पठाई रतनेस जे,
बजे ते पंचबान की कमान कसनी-सी है ।
उठत अलाप लोल नैन की अनासी नचैं,
रागिनी ठनी-सी मोह पावत मनीसी है ।।
गुनन गनीसी श्रुति सोक समनीसी जिन्हैं,
सुनन सुरेस हू को वासन बनी-सी है ।
कोलों कहों वीनों के बजाने में विनोद मोहि,
रंभा के रिझाने में घरीक हू घनी-सी है ।।
वीज नखवारे पंडितों के रखवारे मक-
रंद धन भारे राग अरुन प्रभाव रे ।
वाहुनालवारे पत्र पल्लव विसालवारे,
विसद बराट घाट रेखागन आव रे ।।

कौन-सी परी है बानि कछु न कहै की कानि,
कौंर रतनेस आपु सोधहु उतावरे।
फूलैं सरकंज सब ऊरध वदन एक,
फूलै कर कंज ये अधोमुख ह्वै रावरे॥

पिता न देवे पूत को, चढ़न अमोलक चीज।
अस बावसि दिन एक में, राजड़ काधी रीझ* ॥

बानी माहिं राखौं तौ न बरनिबो पूरों बनै,
दीठि माहिं राखौं तौ जो अंतराय दब्बी है।
आलय में राखौं तौ कितोक ब्रह्मंड बीच,
गान माहिं राखौं तौ जो मोहन मुरब्बी है॥
राखौं धन माँहि तौ अनर्थन को आश्रय जो,
राखौं रसना पै तौ उछिष्ट रद चब्बी है।
राजसिंह तनय असोले रैन रैन दिन,
तोहिं राखिबे कौं रैन एक मन डब्बी है॥

सुंडादंड-उध्धित अनोखी अंग आभा धरे,
कज्जल ते कारे त्यों करारे पनयेस के।
ऐंड़ायल अंगड़ी अड़ंगी आछे ओप भरे,
तिन्हैं देखि देखि गज लज्जत सुरेस के॥
कहैं कवि स्याम कल चूवत कपोल मद,
ताकी लखि गंध मड़रात अलिवेस के।
झूमत झुकत जरे जकरे जँजीरन सों,
घूमत मतंग मति नृपति महेस के॥

---

* कहते हैं जब सूर्यमल्ल जी को सीतामऊ में एक साथ २२ घोड़े मिले थे उस समय उन्होंने उपर्युक्त रचना की थी।

राखें नर झोंगट रतन, करि करि जतन कितेक।
राजसिंह के रतन पर, वारूँ रतन अनेक॥

अन्य कवियों के छन्द—

गर्व गुन खान विद्या वेद के निधान राजै,
गाजत हरी ज्यों अरी हृदय विदारनै।
अवढर दानी हैं सुरेस तें विसेस जान,
बुद्धि का बखानौं 'गननायक बिसारनै॥
भनै सिवराम धराधवल प्रकास्यो जस,
धरम धुरंधर धुरीन धुर धारनै।
चित्र के कवित्त न कवित्तन के चित्र सुने,
चित्र रु कवित्त किये रतनकुमार नै॥
—शिवराम

मंजुल सु मानजुत रहत अनंदमय,
सुवरन दानी ऐसो जग मैं उदार को।
दीपकुल हंस के से विनै सिवराम जूकी,
मानै पति सीतापुर जनक बिहार को॥
लच्छन ललित कर कीरति कलित राजै,
कौसलहि साजै देश कोविद बिचार को॥
कीनो है कवित्त एक श्रीगुरु स्वरूप जू को,
कोऊ कहै राम को कि रतनकुमार को॥
—शिवराम

प्रबल प्रतापी श्री रजेस महिपाल तैने,
ऐसो जस जुद्ध कौ सपन अभिलाख्यो है।

ताको सुनि सोर आवैं कविदल रङ्ग टूटि,
सत्रु सुनि श्रवन सुभट वर भाख्यो है ॥
कहै कवि स्याम दैकै दान सनमान करि,
कविदुजदीन कौ दरद दूरि नाख्यो है।
कासी सौं बिसेस देस मालव धरा को मोर,
सीतामऊ जस कौ जलूस बना राख्यो है ॥
—श्यामराव

उज्ज्वल भर्यो है नीर अमित अगाध जा मैं,
फिरैं मीन ग्राह जे अनेक मन भाये हैं।
उठत तरङ्ग एक एक तैं उतंग किधौं,
अर्घ पाद्य करिवे कौं हस्त उमगाये हैं ॥
लच्छन भनत पौंन प्रबल प्रचंड करि,
पंकज के पात चहुँ ओरन पै छाये हैं।
रतनकुँवार बीर रावरे पधारिवे को,
मानो लवसागर ने पाँवड़ बिछाये हैं ॥
—लच्छीराम

५—नटनागर और तत्कालीन कवि-जगत्

'नटनागर-विनोद' के रचियता महाराजकुमार रतनसिंह जी का जिन कवियों से प्रत्यक्ष परिचय था एवं जो लोग उनकी

नोट :—सूर्यमल्ल जी के पत्र एवं छन्दों में लेखक-प्रमाद के कारण हो अथवा किसी दूसरे सबब से हो, भाषा-सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ दिखलाई पड़ती हैं। अन्य छन्दों में भी ऐसा हो सकता है। इनमें संशोधन करना उचित नहीं प्रतीत हुआ।

साहित्य-गोष्ठी के अङ्ग थे उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। उनकी कृतियों के उदाहरण भी दिये जा चुके हैं। अब हम उस समय के साहित्यिक वातावरण की ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित कर देना चाहते हैं। कवि चाहे जिस प्रांत का हो, वह अन्य प्रांतों के तत्कालीन प्रसिद्ध कवियों से अनजान नहीं रहता है। उसको मालूम रहता है कि अन्य प्रान्तों के काव्य-जगत् में क्या हो रहा है। उसको पता रहता है कि अन्य प्रांतों के साहित्यकार किस विषय पर कविता कर रहे हैं—उनकी प्रतिभा से किस प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ तृप्ति लाभ कर रही हैं। नटनागर जी के समकालीन सूर्यमल्ल, चण्डीदान, श्यामराव, लछमीराम आदि का उल्लेख ऊपर आ ही गया है। ऐसी दशा में नटनागर जी को मध्यभारत एवं राजपूताने की तत्कालीन साहित्यिक अभिरुचि का पूर्ण पता था। देशी नरेशों में उस समय रीवाँ के महाराजा रघुराजसिंह अपना एक निराला साहित्य-मार्ग निकाल रहे थे। ब्रजमण्डल में ललित माधुरी और ललित किशोरी जी के संगीतमय पद्यों में शृंगार-मिश्रित वैष्णव-धर्म की धारा वह रही थी। शृंगारी रूपक में राधाकृष्ण की केलि-लीलाओं की धूम थी। काशी में सेवक कवि का सुन्दर शृंगार-काव्य चारों ओर आदर पा रहा था। एवं भारतेन्दु जी की कीर्ति-कौमुदी का उज्ज्वल प्रकाश बढ़ रहा था। अवध में द्विजदेव जी की 'शृंगार-लतिका' लहरा रही थी और लछिराम कवि के कवित्त सरसता का संचार कर रहे थे। अयोध्याप्रसाद वाजपेयी, ललित एवं लेखराज के कवित्व-विकास को भी इसी समय के अन्तर्गत समझना चाहिए। इसी समय में चन्द्रशेखर जी वाजपेयी ने हम्मीरहठ की रचना की थी। पद्माकर, प्रतापसाहि, वेनी-प्रवीन, ग्वाल, मणिदेव, गुरुदत्त, जसवंतसिंह, मौन, थान, बोधा, ठाकुर एवं चन्दन जैसे सत्कवियों ने नटनागर जी के कविताकाल

के कुछ ही पूर्व हिन्दी-काव्योपवन का जिस ढङ्ग से शृंगार किया था वह सजावट अभी ताज़ी थी। उस उपवन का सौरभ अभी तक कवि-जगत् में व्याप्त था। लल्लूलाल एवं सदल मिश्र के गद्य के प्रादुर्भाव की प्रतिध्वनि भी इस समय में गूँज रही थी। उर्दू-साहित्य में मीर तकी की कविता की धूम थी और वली मुहम्मद नज़ीर उर्दू को सरल, स्वाभाविक एवं हिन्दी के निकट लाने का उद्योग कर चुके थे। ऐसे ही समय में, जब हिन्दी के साहित्य-गगन में सहृदयता की घटायें उमड़ रही थीं, नटनागर जी ने भी अपनी कविता-कामिनी के साथ केलि की। साहित्यिक जगत् की जैसी कुछ परिस्थिति थी नटनागर जी की कविता में उसका प्रतिबिंब बराबर मौजूद है।

६—शृंगार-रस

व्रजभाषा की पुरानी कविता में, और विशेष करके शृंगार-रस की कविता में, विविध प्रकार के भावों का बाहुल्य नहीं दिखलाई पड़ता है। वही कुछ चुने हुए भाव हैं। वही भाव भिन्न-भिन्न कवियों-द्वारा बार-बार दोहराये जाते हैं। उनमें से बहुतेरे तो ऐसे हैं जो नायिका-भेद के अन्तर्गत लक्षणों के उदाहरणों में पेटेन्ट के समान ही व्यवहृत होते हैं। जिन लोगों को केवल भावों की भूख है वे उसी वस्तु को बार-बार सामने पाकर कुछ घबरा-से जाते हैं, कुछ अरुचि-सी पैदा होती है। राधाकृष्ण की प्रेमलीला और गोपी-उद्धव-संवाद का वर्णन किस हिन्दी के पुराने कवि ने नहीं किया है। हम मानते हैं कि इस पिष्ट-पेषण में जी को ऊबा देनेवाला मसाला मौजूद है परंतु हमें यह भी मानना पड़ेगा कि यदि विश्लेषण किया जाय तो संसार की

सभी भाषाओं के साहित्य में, विशेष करके उस साहित्य में जो "क्लैसिक" कहलाता है, भावों की व्यापकता की परिधि अधिक विस्तृत नहीं है। यदि प्रत्येक दृष्टि से छान-बीन की जाय तो जान पड़ेगा कि कविता के लिए सर्वाङ्ग रूप से उपयोगी विषय थोड़ी ही संख्या में उपलब्ध हैं। यों तो प्रतिभावान् कवि भैंसा और भूसा पर भी सुंदर कविता रच सकता है, परन्तु औसत दर्जे की प्रतिभावाले कवि को भैंसे की अपेक्षा 'कोकिल' और भूसे की अपेक्षा 'हरी लता' पर रचना करने में अधिक सुभीता दिखलाई पड़ेगा। व्रजभाषा के पुराने शृंगारी कवियों ने विषय-निर्वाचन की परिधि अधिक संकुचित अवश्य कर दी है, परन्तु जिन विषयों का आश्रय लेकर भारती का शृंगार किया गया है वे पूर्णतया कवित्वमय अवश्य हैं।

शृंगार-रस की कविता के संबंध में भी दो एक बातें निवेदन करनी हैं। पुराने शृंगारिक कवि दो प्रकार के थे एक भक्त और एक लौकिक यथार्थवादी अभक्त (Realistic)। भक्त कवियों के शृंगार-वर्णन दंपति के रूपक में आत्मा और परमात्मा की केलि हैं। राधा आत्मा हैं और कृष्ण परमात्मा हैं। आत्मा परमात्मा को प्राप्त करने के लिए मचलती है। यह मचलाहट पति और पत्नी के भिन्न भिन्न शृंगारिक मनोभावों से बहुत अधिक मिलती-जुलती है। Mystic poetry की विवेचना करनेवाले एक अँगरेज़ लेखक का तो यहाँ तक कहना है कि दंपतिवाले रूपक की सहायता के बिना भक्त की परमात्मा-प्राप्ति की भावना का वर्णन ही नहीं हो सकता है। ईसाइयों की Bible में Solomon's songs का बड़ा महत्त्व है। इन्हें song of songs कहते हैं। हिन्दी के भक्त कवियों की भावनाओं में जो बात है Solomon's songs में भी वही बात है। स्वकीया और परकीया के लौकिक भेद भक्तों की भक्ति-भावना के परे हैं। भक्त के सर्वस्व-समर्पण के सामने इनकी चरचा

व्यर्थ है। "त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पये" का आदर्श बहुत ऊँचा है। राधा भक्ति की साक्षात् मूर्ति हैं। उनमें भक्ति-भावना का उच्चतम विकास है। उनके सम्बन्ध में स्वकीया-परकीया की तकरार की दरकार नहीं है। या तो सूरदास और हित हरिवंस आदि कवि भक्त न थे और यदि थे तो उनका राधाकृष्ण का केलि-वर्णन अलौकिक भक्ति का स्पष्टीकरण है। उस केलि में लौकिक विषय-वासना की छाया नहीं है। एक वेश्या भी भगवती है और जगज्जननी पार्वती भी भगवती हैं। क्या पार्वती जी को भगवती कहते समय हमारे मन में कलुषित भावनायें उठती हैं? बिलकुल नहीं—तब वेश्या के भगवतीत्व के साथ उठनेवाली बुरी वासनाओं की तुलना हम पार्वती जी के भगवतीत्व के साथ क्यों करें? शिव जी की लिंग-पूजा क्या हमारे मन में कोई लज्जाजनक भाव लाती है? नहीं—तब लौकिक लिंग के कालुष्य को हम शिव-लिंग में क्यों खोजें। परमेश्वर को हम पिता कहते हैं। जहाँ पिता है वहाँ माता हैं। माता-पिता का लौकिक सम्बन्ध तो इन्द्रिय-सम्बन्ध से अछूता नहीं है। फिर क्या हम ईश्वर में भी (परम पिता रूपक के कारण) विलासिता की दुर्गन्धि सूँघने लगें? क्या ईश्वर को परम पिता कहना उसकी छीछालेदर करना है? रूपकों की एकदेशीयता का तारतम्य बिगाड़ने से बहुत अधिक गड़बड़ी की सम्भावना है। राधाकृष्ण की केलि में आत्मा-परमात्मा की संयोग-लालसा के अतिरिक्त लौकिक नर-नारी-सम्बन्धी इन्द्रिय-जन्य विलास का आरोप उचित नहीं है। हाँ! अभक्त शृंगारी कवियों की राधाकृष्ण-केलि में कहीं-कहीं कालुष्य का प्रतिबिंब अवश्य है। वहाँ आत्मा-परमात्मा की संयोग-कामनावाला रूपक बतलाना कष्ट कल्पना की पराकाष्ठा है। अनेक अभक्त कवियों के राधाकृष्ण तो छैल-छबीली के समान ही दिखलाई पड़ते हैं। भक्तों और अभक्तों के शृङ्गार-वर्णन में भेद है। राधाकृष्ण की

केलि का वर्णन दोनों ही प्रकार के कवियों ने किया है पर दोनों के ही दृष्टिकोण में अन्तर है। एक में आध्यात्मिकता है और दूसरी में लौकिकता। दोनों के ही वर्णन जब एक ही मानदण्ड से नापे जाते हैं तब भारी गोलमाल का होना अनिवार्य है। हम यह मानते हैं कि कविता का उद्देश्य सदाचार का संहार करना नहीं है। परन्तु साथ ही हमारा यह भी कहना है कि कवि कोरा सदाचार का उपदेशक भी नहीं है। जो हो हमारे पुराने कवि जैसे कुछ थे वह उनकी कृतियों से प्रकट है। हिन्दी-साहित्य में उनकी कृतियों का अब वही स्थान है जो योरपीय साहित्य में classic poetry का। क्रान्ति के युग में सभी पुरानी वस्तुओं पर आक्षेप किये जाते हैं। पुरातन का पराभव किये विना क्रांति को सफलता ही नहीं मिल सकती। क्रान्ति के युग में योरपीय क्लैसिक पोइट्री पर भी भीषण प्रहार हुए। परन्तु क्रान्तियाँ आईं और चली गईं फिर भी क्लैसिक पोइट्री वनी रही। भारत में भी इस समय क्रांति का प्रवाह वह रहा है। व्रजभाषा की श्रृंगार-रस की कविता पर आक्षेप हो रहे हैं। कुछ अंशों में ये आक्षेप ठीक हैं और कुछ अंशों में विलकुल व्यर्थ। हमारा विश्वास है कि व्रजभाषा की पुरानी कविता में इतनी शक्ति है कि वह इन प्रहारों से लुप्त नहीं होगी। क्लैसिक पोइट्री के समान उसकी भी सत्ता वनी रहेगी।

व्रजभाषा की पुरानी कविता में जिन विषयों एवं भावों का वर्णन है, प्रायः उन्हीं से मिलते-जुलते भावों और विषयों का समावेश महाराजकुमार रतनसिंह जी की कविता में भी है। उसी प्रकार की अन्योक्तियों, भावों एवं विषयों का आश्रय महाराजकुमार साहब ने भी लिया है। इसलिए मोटे तौर से जो बातें पुराने कवियों के सम्बन्ध में कही जा सकती हैं वही महा-राज साहव की कविता पर भी लागू हैं। महाराजकुमार साहव

किसी नये पथ के पथिक नहीं हैं। ब्रजभाषा के कवि जिन भावों को प्रचलित सिक्कों के समान अपने काम में लाते हैं, महाराजकुमार साहब ने भी साहित्य के हाट में अपनी निराली छाप बैठा कर उन्हीं सिक्कों का व्यवहार किया है। उनकी अन्योक्तियों में कैसी विलक्षणता है, उनकी शृंगार-सूक्तियों में कितना रस है, उनके भावों के साथ अलंकारों की जगमगाहट कहाँ तक सौंदर्य-वर्द्धिनी है, व्यंग्य और ध्वनि के सत्कार में वे कहाँ तक सफल हुए हैं, ये सब बातें "नटनागर-विनोद" पढ़नेवाले पाठकों के सामने हैं। सहृदय के हृदय इसके साक्षी हैं। अपनी रुचि और गति के अनुसार हम भी यहाँ पर कुछ उदाहरणों का सङ्कलन करेंगे।

७—भाषा

कविता में भाव प्रधान है और भाषा गौण। भाव प्राण है और भाषा शरीर। जिस कविता में प्राण नहीं वह कविता ही क्या ? प्राण हों तो भद्दा शरीर भी क्षम्य है परन्तु विना प्राण का सुन्दर शरीर किस काम का। इसलिए भाषा कैसी भी हो पर यदि भाव अच्छा है तो सब ठीक है; परन्तु भाव के अभाव में केवल अच्छी भाषा के सहारे कोई कवि-पदवी को प्राप्त कर नहीं सकता। भारतेन्दु जी ने ठीक ही कहा है:—

"बात अनूठी चाहिए, भाषा कोऊ होय।"

परन्तु अच्छी भाषा के साथ भाव खिल उठता है, उसकी दीप्ति दूनी हो जाती है। इसी लिए अच्छे कवि प्रायः अच्छी भाषा में अपने भाव प्रकट करने का प्रयत्न करते हैं। अच्छी भाषा वही है जो तुरन्त पाठक को भाव के अन्तस्तल तक पहुँचा

दे। यह काम भापा की स्वाभाविक सरलता से पूरा होता है। सरल भापा में जब मधुरता भी आ जाती है तब भापा की रमणीयता बहुत बढ़ जाती है। कवियों के भाव स्वाभाविक अलंकारों से सजकर ऐसी भापा को खोजते रहते हैं जो कृत्रिमता के विना उन्हें स्नेहपूर्वक अपने सुखकर अंक में स्थान दे। कवियों के स्वच्छन्द भाव छंदों में विहार करते हैं। जो भाषा भावों की इस छंदप्रियता में घुल मिल जाना पसन्द करती है, कविता के लिए वह सुन्दर भाषा है। ऐसी भाषा में भाव का परिस्फुटन थोड़े से शब्दों में हो जाता है। भारी वाक्यावली की आवश्यकता नहीं पड़ती। कविता की भाषा के लिए लोच अथवा लचकीलापन भी परमावश्यक है। कवि चाहता है कि उसकी भाषा मोम के समान हो, काँच के सदृश नहीं। बस, जिस भाषा में ऐसे गुण हों वही कविता के लिए उपयुक्त भाषा है। ये गुण किसी भाषा विशेप की वपौती नहीं हैं। किसी भी भाषा के सफल काव्य में इन गुणों की प्राणप्रतिष्ठा दिखलाई पड़ेगी। सौभाग्य से समर्थ कवियों के हाथों पड़कर साहित्यिक व्रजभापा ने इन गुणों को बड़े भोलेपन के साथ अपनाया है।

'नटनागर-विनोद' ग्रंथ के रचयिता का कई भापाओं पर अधिकार था। डिंगल तथा अन्य कई प्रान्तीय भाषाओं में भी उनकी कविता उपलब्ध है। 'नटनागर-विनोद' में इन सबके बहुत-से उदाहरण मिलेंगे। पाठकों की सुविधा के लिए हमने यहाँ पर इनकी सभी प्रकार की भापाओं के उदाहरण संकलित कर दिये हैं। 'नटनागर-विनोद' में शुद्ध उर्दू के उदाहरण नहीं हैं इसलिए नटनागर जी के "दीवानए उश्शाक़" से भी कुछ पंक्तियाँ दे दी गई हैं। "नटनागर-विनोद" के अधिकांश छंद अच्छी साहित्यिक व्रजभापा में हैं। पहले उन्हीं के उदाहरण दिये जाते हैं :—

(१) ब्रजभाषा

सारे ब्रज सों मैं बैर बिसाह्यो, नाथ मैं पाती दै पछितायो।
का जानैं तुम कहा लिख्यो थो, जाको फल मैं पायो॥
जित जित जाय कहूँ नहिं आदर, महा अजस सिर छायो।
माधौ मैं पंडितपन तजि कै, उनको गायो गायो॥
सीख सुनाय कही सब हम सों, काहू मन न पत्यायो।
उमड़ी प्रीति घटा दस दिसि तैं, बरषि प्रवाह बढ़ायो॥
भरि भरि ढरत ढरत फिरि भरि भरि, उमगि उमगि झरि लायो।
ज्ञान भक्ति वैराग बिचारे, यक पल माँझ बहायो॥

उपर्युक्त पद को पढ़कर सूरदास के पदों का स्मरण हो आता है। भाषा का प्रवाह स्वच्छन्द है। उसमें भाव स्वाभाविक रीति से जगमगा रहा है। उसके समझने के लिए क्लिष्ट कल्पना की ज़रूरत नहीं। अनेक अलंकार बिना प्रयास भाव का सौन्दर्य बढ़ा रहे हैं।

ऊधव लिखाय लाये ज्ञान वयराग जोग,
रोग सो दिखात हमैं नाहिं कछु आस है।
नेम जो कियो है नटनागर उपासना को,
व्रत न टरैगो देखौ जौ लौं घट स्वास है॥
कान्हर कहावै कौन वाकौ हम जानै नाहिं,
कान्हर हमारो ऐसी लिखै बड़ी हाँस है।
कान्हर तिहारे तैं हमारौ कछु काम नाहिं,
कान्हर हमारौ तौ हमारे प्रान पास है॥

ऊपर की घनाक्षरी की भाषा वैसी ही है जैसी देव और पद्माकर आदि की होती है। यद्यपि छंद का भाषा-प्रवाह पद के प्रवाह के समान स्वच्छंद नहीं है फिर भी भाव को तत्काल

समझने में कोई कष्ट नहीं है। वैराग्ग का 'वयराग' रूप अच्छा नहीं है।

सर मैं तरवाय के बोरिये कै, गिरि पै चढ़वाय कै डारिये जू।
कछु जान के लेन के और उपाय तौ सिंह गयंद चकारिये जू॥
अब प्रान तौ कान्ह मैं आनि रह्यो, जो उवारिवो ह्वै तो उवारिये जू।
नटनागर ऐंचि कै ढीठ महा, हहा वंसी की तान न मारिये जू॥

ऊपर के सवैया का भाषा-प्रवाह ठाकुर और बोधा की भाषाओं की शब्द-योजना से मेल खाता है। भाव को समझने में यहाँ भी प्रसाद गुण सहायता करता है।

तीनों ही उदाहरणों से स्पष्ट है कि कवि अच्छी साहित्यिक व्रजभाषा का प्रयोग करने में भली भाँति समर्थ था।

(२) अवधी

मीत मोर जिउ सगुन जु, अच्छर आहि।
बसत अरथ मति ताते, क्यों बिलगाहि॥

गोस्वामी तुलसीदास एवं रहीम ने वरवै छंदों-द्वारा भी कविता की है। वरवै में प्रायः अवधी भाषा का संमिश्रण रहता है। नटनागर जी का वरवै ऊपर दिया है। एक और देखिए—

साजन कथा विरह की, लिखी न जाय।
कहि हैं ये अंबुद उत, कछु समुझाय॥

'नटनागर-विनोद' में अनेक वरवै हैं, उनको पढ़कर रहीम की याद आती है।

(३) संस्कृत-मिश्रित व्रजभाषा

जय गुरु भूप दिनेस, जगत-पाखंड-विहंडन।
जय गुरु भूप दिनेस, तिमिरि-अघ-जुत्थ-विखंडन॥

जय गुरु अूप दिनेस, सुजस—पंकज-सुख-मंडन।
जय गुरु अूप दिनेस, दुष्ट-मति-बुद्धी-दंडन॥
जय जयति अूप अकरन हरन, करन करावन दास कहँ।
जय जय दिनेस अज्ञान हर, ज्ञान करन अज्ञान जहँ॥

कविवर केशवदास ने इस ढंग की बहुत सी कविता की है। उपर्युक्त छप्पय को पढ़कर 'कविप्रिया' के छप्पय याद आते हैं।

(४) पद्य-पत्रों की ब्रजभाषा

सियापुरी बिहाय कै। गवालियार जाय कै॥
मुकाम बीस ह्वाँ किये। उप्रान्त आगरे गये॥
बिहाय ताहि, गंग को—किये विसुद्ध अंग को॥
फिरे तबैं मधूपुरी। यहाँ सुजातरा करी॥
बनं मधू निहारि कै। सु सैलराज धारि कै॥
भवन्न डीघ के लखे। सु केसोराय कों दिखे॥
सुपंथ कोट पाय कैं। रवीपुरी सु आय कैं॥
गरौठ मैं मुकाम था। कुवृष्टि का न थाह था॥
वितान को सुखाय कैं। सुबाज खेड़ आय कैं॥
अगन्न सुक्ल पच्छ है। दसे सनी प्रतच्छ है॥

नटनागर जी में और उनके गुरु बाबा अूपदास जी में ख़ूब पत्र-व्यवहार हुआ है और वह प्रायः पद्य में है। इसकी भाषा एक प्रकार की कामचलाऊ ब्रजभाषा है। इसमें मालवा की प्रान्तीय भाषा का भी मिश्रण प्रतीत होता है।

(५) उर्दू-मिश्रित खड़ी बोली

भौंहें अलसोहैं टुक टेढ़ी कर भाले थीं।
जाले दिल आशक के तिनको फिर जाले थीं॥

हरनायक पतसाह, घूघ करे डाटी धरा।
वाँड़ बंध वराह, तैं काटी माहेस तण ॥
औरँग तिमिर अपार, पसर्‍यो इल ऊपर प्रबल।
जुको अँधारो जार, तूँ ऊगो माहेस तण ॥

उपर्युक्त पाँच पद्यों में से अन्तिम डिंगल भाषा में है और शेष मालवी, राजपूतानी, पंजाबी, गुजराती आदि के मेल के हैं। इनके उदाहरण भी 'नटनागर-विनोद' में मौजूद हैं।

८—प्रेम और विरह

नटनागर जी की कविता में प्रेम और विरह का बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है। इस वर्णन को पढ़ने से जान पड़ता है कि कवि अपनी अनुभूत बातों को हृदय-तल से निकालकर वाणी के द्वारा प्रेमियों के सामने रख रहा है। नटनागर जी कहते हैं कि "महा सूक्ष्म प्रेम को मारग है" तथा इसमें "रंक रु राव को भाव नहीं" है। उनका कथन है कि "यहि रंग रँगो जिन्हैं और न सूझो" तथा जो लोग "विरहानल दाह सों दागे नहीं" हैं वे इसकी "रीति न जानत हैं।" शस्त्राघात, जंगली पशुओं-द्वारा आक्रान्त होना, विषपान, अग्नि में जलना, अनशन आदि से शरीर को जो पीड़ा होती है, उन सबसे बढ़कर पीड़ा प्रीति-रीति के निर्वाह में है, ऐसा नटनागर जी का मत है। उनके छंद देखिए :—

आलम सेख सुजान घनानँद, जो जग बीच या जार अरूझो।
रंक रु राव को भाव नहीं, यह रंग रँगो जिन्हैं और न सूझो ॥
वा अलबेली सी लैली निहारि कै, पूत पठान को जाहिर जूझो।
जान अजान भये नटनागर, प्रेम को नेम प्रवीन सों बूझो ॥

पूर्वोक्त छंद में नटनागर जी ने उन प्रेमियों के नाम गिनाये हैं जिन्होंने प्रेम के लिए कष्ट सहे हैं।

महा सूछम प्रीति को मारग है, कोऊ जानै कहा अनुरागे नहीं।
उनहीं को बिचारिये या बिधि सों, मनौं सोवत नींद सों जागे नहीं॥
नटनागर रीति न जानत हैं, बिरहानल दाह सों दागे नहीं।
तिनको जग जीवन जानों वृथा, परि प्रेम-पयोधि में पागे नहीं॥

कवि की राय में प्रेम के बिना जीवन वृथा है।

कठिन महा न खान बरछी बँदूक बान,
प्रानहू की हान सिंह बारन वकारिबो।
जहर हलाहल को पान हू कठिन नाहिं
त्यों ही नटनागर न आगि तन जारिबो॥
त्यों ही जप जोग व्रत तीरथ अहार बिन,
करिकै अनेक कष्ट देंहहू को गारिबो।
ये ते सब मेरे जान सुलभ लखात सारे,
कठिन महान प्रीति रीति प्रति पारिबो॥

नटनागर जी को अन्य शारीरिक कष्ट प्रीति-रीति-निर्वाह के सामने कुछ भी नहीं समझ पड़ते हैं।

अली मृग मीन मोर चातकी अही चकोर,
कंज रु कुमोद चक्रवाक आदि मैं गिने।
बद्रे—मुनीर बेनजीर सीरीं खुसुरू में,
सागर प्रवीन जलाबूब ना जिते सुने॥
सीरीं फरहाद तथा यूसुफ जुलेखा जैसे,
लैले मजनू ज्यों हैं गुलिसता घने घने।
नागर जू प्रीति को जतावै इन्हैं लावै जीह,
प्रीति करिबे की रीति जानत इते जने॥

इस छन्द में कवि ने कीट-पतंग, पशु-पक्षी एवं कई प्रकार के पुष्पों के सम्बन्ध में प्रेम-निर्वाह के जो कवि-सम्प्रदाय हैं, उनका उल्लेख किया है और फिर मनुष्य-जगत् के प्रसिद्ध प्रेमियों के गुण गाये हैं। अन्त में आपने यह निष्कर्ष निकाला है कि इन्हीं को यथार्थ प्रेम का ज्ञान है। कवि का कहना है:—

"नागर जू निरखी न लिखी सद ग्रन्थन मैं,
नाजुक निपट है निहारी रीति नेह की।"

'नटनागर-विनोद' में गोपी-उद्धव-संवाद-सम्बन्धी कई छन्द बड़े ही सरस हैं। प्रेम-विरह का इनमें बड़ा ही सुन्दर स्वाभाविक वर्णन है। गोपियाँ उद्धव जी से कहती हैं:—

ये अँखियाँ दुखिया हैं सदा, कब ह्वै सुखिया छवि मित्र की ज्वै हैं;
जानती हौं मैं असाढ़ के अम्बुद ज्यों उमड़े हैं अघाय कै च्वै हैं॥

फिर प्रेम-विह्वल होकर कातरता से भरी उनकी यह उक्ति कितनी सरस है:—

मिलिवो रु बोलिबो निहारिवो रह्यो है दूरि,
हा हा उन पायन की नेकु धूरि आनि दे।

इस विरहावस्था में उन्हें कोकिल की बोली कैसी लगती है यह भी सुनिए:—

लाज की नसायनि, बसायनि कछू न ताते,
कोकिला कसायनि पुकारति "कुहू कुहू।"

इस विरह-दुःख के सहने में 'आह' परम सहायक है। गोपियाँ कहती हैं:—

आह नहिं होती तो कराहि मरि जाते केते,
दरदिन उर माँझ आह विसराम है।

अपने बरवै और सोरठा छन्दों में कवि ने विरह-प्रेम पर बड़ी सुन्दर सूक्तियाँ कही हैं। उनके भी कुछ उदाहरण दिये जाते हैं:—

साजन कथा बिरह की, लिखी न जाय।
कहिहैं ये अम्बुद उत, कछु समुझाय॥
देखहु यह विपरित गति, बरसत मेंह।
तऊ झार ना मिटती, प्रजरति देह॥
देखहु यह कस लाग्यो, नैनन नेह।
बूड़े जलहिं रहत हैं, सूखति देह॥

विरह की इन विचित्रताओं को बरवै में पढ़ने के बाद अब उनका सौष्ठव सोरठों में देखिए:—

बुधि सों नेकु विचारु, रे तबीब क्यों तकत तू।
बिरहा दरद दरार, पूरन ह्वै न बिरंचि सों॥
उनके जतन अनेक, घाव लगत केउ सस्त्र के।
टाँका पटी न सेंक, बिरह-कटारी सों बिंधे॥
सुरस प्रीति अन्हवाय, मो दिल पीतर रूप को।
बिरहा-तपन तपाय, कीनो सोनों सों रमो॥
यों दमकत इक दाग, मो उर ऊसर बीच को।
मानहुँ जरत चिराग, सूने सहर अटान ज्यों॥

६—नेत्र

नटनागर जी ने नयनों का वर्णन भी बहुत बढ़िया किया है। रूप-रस का पान करनेवाले नेत्र-मधुकरों का वर्णन शृंगार-रस की कविता का एक अभिन्न अंग है। नटनागर जी की नेत्र-सम्बन्धी कुछ सूक्तियाँ आगे देखिए:—

१—मोको कछु सूझति नहीं, तू का बूझति बाल,
इन आँखिन मैं छै रह्यो, कारो पीरो लाल।
केहरि हैं हरि हैं न जानौं हौं कहा री कहौं,
मेरी दोऊ आँखिन मैं कारो-पीरो ह्वै रह्यो।

२—कैधौं रतिराज आज बनिकै सिकारी मीर,
खंजन द्वै डारे पिंजरा के बीच अकरे।
कारे घुँघुँरारे बार बीच मतवारे नैन,
मानौं उनमत्त द्वै जंजीरन सों जकरे॥

३—काहे प्रतीति करी इनकी, इन नैनन हाय घने घर घाले।

देखी नटनागर अनीति रीति आँखिन की,
अंग सबही तैं मंजु अति बरजोर हैं।

× × × ×

कारी कजरारी ढाँपी रहति विचारी जऊ,
हेतु सुकुमारता के कारज कठोर हैं॥

"ज्यों परैं दूरि त्यों पीछे चितौत, तिरीछे से नैन सनेह की सूली।"
"चप रूप खिलौनन धारिबे को, हठ रूप भये मनो बालक द्वै।"

४—सब हाव रु भाव लिये संग ही, तिरछी सी चितौनि क्यों धारिबो है।
नटनागर के न कढै नटसाल, ये सूधो निहारिबो मारिबो है॥
उभकी दोऊ रहत नहीं, लगती पल पाँखैं।
महा हलाहल गहर कहर, करि डारी आँखैं॥

५—हित करि अधिक हँसाय, भोरे ह्वै अति भूल दै।
फंदन बीच फँसाय, नैन कुटिल न्यारे भये॥
करनी मीत निहारि, कपट फैल ऊपर कियो।
मो मन कुंजर पार, नैन बधिक या विधि लियो॥

(१) आँखों में उस समय काला पीला दिखलाई पड़ने लगता है जब मन पर किसी प्रकार का सहसा भारी आघात पहुँचता है। नेत्रों में श्यामता, पीतता की इस अस्वाभाविक उपस्थिति के ज्ञान का उपयोग नटनागर जी बड़े मनोहर ढंग से करते हैं। नायिका ने पीताम्बरधारी कृष्ण को देखा है, वही मूर्ति उसकी आँखों में समा रही है। आँखों के सामने इस काले-पीले के घूमने की बात नायिका ने सखी से बड़े ही अनूठेपन के साथ कही है। दूसरे पद्य में उसने हरि रूप के प्रभाव की बात भी कही है। साथ ही केहरि का भ्रम भी बतलाया है। केहरि के शरीर पर काले पीले धब्बे होते ही हैं। इस प्रकार का संदेह उठाना भी बड़ा ही सरस है।

(२) पिंजड़े में पड़े, इसलिए तड़फड़ाते हुए, खंजनों के समान नेत्रों का होना उचित ही है; पर आगे घुँघुरारी अलकों के बीच से नेत्रों का जँजीरों से जकड़े दो मस्त हाथियों के समान दिखलाई पड़ना बहुत सुन्दर है। बड़ी अच्छी सूझ है।

(३) जिन नेत्रों ने बड़े-बड़े घर बरबाद कर दिये उनसे प्रीति करना, उनकी प्रतीति मानना, निस्संदेह बेजा है। नेत्र देखने में तो बड़े सुन्दर हैं परन्तु जोरदार भी बड़े हैं, यद्यपि उनमें सुकुमारता की सब बातें मौजूद हैं फिर भी वे कठोर हैं। सुकुमारता के अनुरूप उनके काम नहीं हैं। तीक्ष्ण शूलों के समान वे प्राण निकाल लेते हैं। परन्तु उनका एक कोमल रूप भी है। जब उनकी मचलाहट पर ध्यान जाता है तो ऐसा जान पड़ता है कि वे हठीले स्वभाव के दो बालक हों जो सौन्दर्य-रूपी खिलौने के लिए मचल रहे हों।

(४) तिरछी चितवनि से कष्ट पहुँचना कुछ आश्चर्य नहीं उत्पन्न करता। टेढ़े से आशा ही क्या की जाय? परन्तु यहाँ तो

"सूधो निहारिबो मारिबो" हो रहा है। सचमुच "महा हलाहल गहर कहर करि डारीं आँखैं।"

(५) नेत्रों की कुटिलता का एक और नमूना लीजिए:—पहले तो बड़ा हेल-मेल बढ़ाया, खूब प्रसन्न किया, अपने भोलेपन को दिखला कर विश्वास उत्पन्न कराया। जब इस प्रकार लक्ष्य भुलावे में आ गया तो उसको फंदों में फँसा दिया और आप जाकर दूर विराजे। कैसे विश्वासघाती हैं ये नेत्र!

जंगली हाथी पकड़ने के लिए एक बड़ा गड्ढा खोदा जाता है। फिर उस पर फूस की हलकी टट्टी रख दी जाती है। गड्ढे के आस-पास एक हथिनी छोड़ दी जाती है। हाथी उसके पास आने के लिए ज्यों ही टट्टी पर पाँव रखता है तो अपने बोझ के कारण टट्टी को तोड़ कर गड्ढे में जा गिरता है। हाथी के शिकारियों के ये हथकंडे नेत्रों ने भी सीख लिये हैं। उन्हीं के समान मन को नेत्र भी फँसाते हैं। एक ओर करिणी का लालच दिलाया जाता है तो दूसरी ओर मित्रता का लालच है। एक ओर टट्टी का जाल है तो दूसरी ओर कपट का फैलाव है, मन बेचारा फँस ही जाता है।

नेत्रों पर नटनागर जी की और भी अनेक सुन्दर सूक्तियाँ हैं, परन्तु स्थान-संकोच के कारण इतने ही पर संतोष करना पड़ता है। सूक्तियों की सरसता पर अधिक प्रकाश डालने के लिए भी हमारे पास जगह की कमी है।

१०—वर्णन और उक्ति-सादृश्य

व्रजभाषा के पुराने शृंगारी कवियों ने विरह, गोपी-प्रेम, नायिका-सौन्दर्य, प्रेम एवं नायिका के आभूषणों आदि का वर्णन

किया है। एक ही विषय का वर्णन होने से कभी-कभी भिन्न-भिन्न कवियों के वर्णनों में कुछ नूतनता और विलक्षणता के साथ-साथ सदृश उक्तियों के दर्शन होते हैं। 'नटनागर-विनोद' में भी ऐसी उक्ति-सादृश्यता दिखलाई पड़ती है। यहाँ पर पाँच छः उदाहरण दिये जाते हैं :—

१—बिरहा बिषम दवारि, मन बन के दाहत बिटप।
यह अजरज है हाय, डहडहात नित प्रेम तरु॥

—'नटनागर'

नैकु न झुरसी बिरह झर, नेहलता कुम्हिलाति।
निल नित होत हरी हरी, खरी झालरत जाति॥

—'बिहारी'

२—हम जाति गवाँइ अजाति भई,
कुलकानि ते आनि लजै तौ लजै।
हम संक तजी पितु-मातहू की,
मोहिं नाथहू त्रास तजै तौ तजै॥
नटनागर की न गली तजिहौं,
गुरुलोक के वाक गजै तौ गजै।
ब्रजमंडल मैं बदनामी की ढोल,
निसंक ह्वै आजु बजै तौ बजै॥

—'नटनागर'

अब का समुझावती को समुझै,
बदनामी के बीजन बो चुकी री।
तब तो इतनो न विचार कियो,
यह जाल परे कहु को चुकी री॥

कहि ठाकुर या रसरीति रँगे,
सब भाँति पतिव्रत खो चुकी री।
अरी नेकी बदी जो बदी हुती भाल मैं,
होनी हुती सु तौ हो चुकी री॥

—'ठाकुर'

बोरथो बंस विरुद मैं बौरी भई बरजत,
मेरे बारबार बीर कोई पास बैठो जनि।
सिगरी सयानी तुम बिगरी अकेली हौं हीं,
गोहन मो छाँड़ो मोसौं भौंहन अमेठो जनि॥
कुलटा कलंकिनी हौं कायर कुमति कूर,
काहू के न काम की निकाम यातें ऐंठो जनि।
देव तहाँ वैठियत जहाँ बुद्धि बढ़ै हौं तौ,
बैठी हौं विकल कोई मोहिं मिलि बैठो जनि॥

—'देव'

३—कारे बिन अंजन ही खंजन तुरी के गंज,
कंजन कुरंग मीन मंजन सँवारे क्यों।
कच कुच कटि राजै ब्याली चक केहरी सी,
भोरी भली गोरी आजु अंगराग वारे क्यों॥
सुघराई सागर सुने हैं नटनागर कौ,
सहज सिंगार रीझैं उद्यम ये धारे क्यों।
रूप के बनाइबे को रूपे के अभूषन ते,
गोरे गोरे पाँय कारे कारे करि डारे क्यों॥

—'नटनागर'

जावक रंग रँगे पद-पंकज, नाह कौ चित्त रँग्यो रँग यातैं।
अंजन दै करि नैनन मैं, सुखमा बढ़ी स्याम सरोज प्रभातैं॥
सोने के भूषन अंग रच्यो मतिराम सबै बस कीबे की घातैं।
यों ही चलै न सिंगार सुभावहिं, मैं सखि भूलि कही सब बातैं॥
—'मतिराम'

४—लोक कुल बेद लाजि जाहि ते अकाज कीनी,
जाके रस प्रीति-रीति सघन सने रहौ।
तोर्‌यो हित इततैं सु जोर्‌यो उत नयो नेह,
ताहू को न सोच पोच भृकुटी तने रहौ॥
कूबरी भई है रानी हम तौ बिगानी हाय,
तौहू बिन दामन की दासिका गने रहौ।
नागर जू छेम-जुत आयु जुग कोटिक लौं,
चित्त की लगनि जहाँ मगन बने रहौ॥
—'नटनागर'

पाती लिखी सुमुखि सुजान पिय गोबिंद कौं,
श्रीयुत सलोने स्याम सुखनि सने रहौ।
कहै पदमाकर तिहारी छेम छिन छिन,
चाहियतु प्यारे मन मुदित घने रहौ॥
बिनती इती है कि हमेस हमहूँ कौं निज,
पायन की पूरी परिचारिका गने रहौ।
याही मैं मगन मनमोहन हमारो मन,
लगन लगाइ लाल मगन बने रहौ॥
—'पद्माकर'

५—तुम जो बतावत हौ नंद के दुलारे वहाँ,
येहू बात झूँठी जिन कहौ ब्रज सारे मैं।

वेहू कोऊ और ह्वैहैं नाहिंन परेखो कछू,
दूषन लगावत हौ हाय प्रानप्यारे मैं ॥
नागर करत हैं हमारे संग नृत्य नित,
बाँसुरी बजावत हैं जमुना-किनारे मैं ।
मोहन तुम्हारौ तौ तुम्हारे मथुरा के बीच,
मोहन हमारौ तौ हमारे नैन तारे मैं ॥
—'नटनागर'

प्रानन के प्यारे तनताप के हरनहारे,
नंद के दुलारे ब्रजवारे उमहत हैं ।
कहै पद्माकर उरूझे उर अंतर यों,
अंतर चहे हूँ जे न अंतर च्हहत हैं ॥
नैननि बसे हैं अंग अंग हुलसे हैं, रोम—
रोमनि रसे हैं निकसे हैं को कहत हैं ।
ऊधौ वे गोविंद कोऊ और मथुरा मैं यहाँ,
मेरे तौ गोविंद मोहिं मोहीं मैं रहत हैं ॥
—'पद्माकर'

६—बत्तीसौ दसन तैं यौं रसना को दाबि रही,
रसना कौ दाबि रही पल्लव दसन तैं ।
—'नटनागर'

बसना हमारो कछू रस ना बनत नाथ,
रसना दसन दाबै रसना झनक तैं ।
—'देव'

चढ़त अटारी गुरुलोगन की लाज प्यारी,
रसना दसन दाबै रसना झनक तैं ।
—'मतिराम'

पीछे दिये छंदों में जो भाव-सादृश्य उपलब्ध है, आशा है सहृदय पाठकों का उससे मनोरंजन होगा। इन छंदों के सम्बन्ध में हमें और अधिक कुछ नहीं कहना है। रुचि-भेद के अनुसार नटनागर, बिहारी, मतिराम, देव और पद्माकर पाठकों को अपनी सूक्तियों-द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में प्रसन्न करेंगे।

११—उर्दू की कविता

नटनागर जी 'उश्शाक' नाम से उर्दू में भी कविता करते थे। उनका उर्दू का पूरा दीवान मौजूद है। इसका निर्णय तो उर्दू के विशेषज्ञ ही कर सकते हैं कि महाराज कुमार की उर्दू-शायरी कैसी है; परंतु उर्दू के साधारण ज्ञान के भरोसे हम यह कह सकते हैं कि वह सरस और सुन्दर है। यहाँ पर तीन उदाहरण द्रष्टव्य हैं:—

देहात व हर शहर बयाबाँन में देखा;
जितने कि जहाँ बीच हैं सब जान में देखा।
दरिया में भी हर कोह में दूकान में देखा;
बेताल में सर सोज़ में हर तान में देखा॥
अर्ज़ो शमा तलक यह उसी का ही नूर है;
छिपता नहीं छिपाये से ज़ाहिर ज़हूर है।
नाबीना होगा जिससे तो ज़ाहिर मुदूर है;
आँखों में जिसके आया है उसको सरूर है।

देखा न कभी, देखा तो हर आन में देखा;
हैवान व इंसान क्या, हर शान में देखा।
रोज़ा नमाज़ हज जो करते हैं रात दिन;
उसकी ख़बर न जिसको है खोते हैं रात दिन।

है कौन वह कहाँ है न पाया है रात दिन;
हिन्दू भी इसी तौर से रोते हैं रात दिन ॥

ज़ुल्फ़ चश्मों को देखकर उसकी, सुंबुल नरगिस भी हुआ मुश्ताक़।
वह ख़रामा हुआ था इस ढब से, हैं किये ख़ुश ख़राम भी मुश्ताक़।

जिसका मुश्ताक़ एक ज़माना है;
क्यों न उश्शाक़ तू भी हो मुश्ताक़ ॥

मैं हुआ मूए मार पर मुश्ताक़,
ज़ुल्फ़ के तार तार पर मुश्ताक़।
देख ज़ोहरा जिबीं व माहे दहन,
मैं तो क्या सब फिगार हैं मुश्ताक़ ॥
सियाह मू बीच माँग वह काफ़िर,
कहकशां शब न होंगे क्यों मुश्ताक़।
अँगड़ियाँ देखकर जिसकी वल्लाह,
माही आहू वदाम हैं मुश्ताक़ ॥
देख अब्रू छिपाये क़स क़ज़ा,
कमरें ईद जिसका है मुश्ताक़।
यह इशारें हैं चश्म के बाँके.
हैं कमाँदार देखकर मुश्ताक़ ॥
हाय बीनी को देखकर सीधी,
गुले चंपा शगूफ़ा है मुश्ताक़।
कान जिसके अजब मलाहत के,
पहुँचने को सरोद हैं मुश्ताक़ ॥
लाल लब किस तरह के हैं नायाब,
संग याक़ूत जिसके हैं मुश्ताक़।
उसके लब से ब'लब मिलाने को,
जाम लालाँ निगार हैं मुश्ताक़ ॥

गोहरे सिल्क देख दंदाँ के,
दुरे इलमास क्यों न हो मुश्ताक़।

दाम-उलफ़त से सनम मुझको न आज़ाद करो,
दिल वीरान है मेरा जिसे आबाद करो।
जो वह इक़रार था उश्शाक़ से वह भूल गये,
मुँह मुबारक से जो फ़रमाया उसे याद करो॥

उश्शाक़ के दिल से यह अरमान न निकलेगा,
जब तक यह सुराही का सामान न निकलेगा॥
बोले न कभी लैला मजनूँ ज़रा हँस कर,
वह क़ैस भी खा तैश बयाबाँ न निकलेगा॥

उश्शाक़ तेरा तालिबे दीदार खड़ा है,
ईमान व दिलजान से ख़रीदार खड़ा है।
इस वक्त. ख़बर लेना था तुझको अरे ज़ालिम,
तेरी ही बस फिराक़ में लाचार खड़ा है॥

ऐ यार तेरी आँखैं सरशार नज़र आईं,
नरगिस की वह हैं आँखैं बीमार नज़र आईं।
उश्शाक़ से हँस बोला जिस वक्त. सुना तूने,
ग़ैरों की मुझे आँखैं खूँवार नज़र आईं॥

मिला है मुझको तो नाहक यह रोग आँखों से,
हुआ है यार का ज़ाहिर बुज़ुर्ग आँखों से।
उश्शाक़ क्या करूँ दिल को तो हाय बेंच दिया,
दलाल आप बने रो दरोग़ आँखों से॥

अब तो हर तौर यार से मिलना,
सुनके दुशनाम प्यार से मिलना।

वाज़ आया है ज़ीस्त से उश्शाक़,
अब तो सिज़गाँ के दार से मिलना ॥

या ख़ुदा अब वह मेरा मुझसे दिल आराम मिले,
उसको मिलने के सबब दिल को भी आराम मिले
ईद के चाँद को उश्शाक़ जब से ढूँढ़े है,
ज़ोर किस्मत जो करे तो वह शरे शाम मिले ॥

१२—सरस सूक्तियाँ

शृंगाररस की परिधि के भीतर रहकर नटनागर जी ने अपनी कविता में रस-परिपाक, अलंकार-सौंदर्य और भाषा-माधुर्य का अच्छा चमत्कार दिखलाया है। उनकी सूक्तियाँ सर्वत्र संबद्ध नहीं हैं। एक छंद का दूसरे छंद से ऐसा कोई संबंध नहीं है। किसी नायिका-विशेष अथवा अलंकार-विशेष का लक्ष्य करके उनके छंद नहीं बने हैं फिर भी उनके अनेक छंदों में विशेष-विशेष नायिकाओं एवं विशेष-विशेष अलंकारों के उदाहरण मौजूद हैं। उनके गोपी-उद्धव-संवाद का नाम गोपी-पचीसी था। बाद को वह "नटनागर-विनोद" का अंग बना दिया गया। 'गोपी-पचीसी' के सब छंद एक-रस नहीं हैं। कुछ छंद तो बड़े ही सुन्दर हैं, परन्तु कुछ साधारण भी हैं। यदि पचीसों छंद एक प्रकार के होते तो यह पचीसी अद्वितीय बन जाती। दो छंद यहाँ पर उद्धृत किये जाते हैं:—

वृन्दावन बीच ऊधो संक गुरु लोगन की,
मथुरा प्रवेश कै कै निपट निसंक भो।
ललित त्रिभंगी नटनागर कहाय हाय,
वंक दासी संग बैठि चितहू त्रिवंक भो ॥

कंबू पय गंग की तरंग तैं महान सुभ्र,
जस को समुद्र ऐसो बृथा जुत पंक भो।
चंदबंसी अवतंस मोहन मयंक सुद्ध,
पूरन प्रकास बीच कूबरी कलंक भो॥

'कूबरी-कान्ह' के संयोग की 'मयंक-कलंक' की तुलना बड़ी चुटीली और सरस है।

उद्धव को पठये उत तैं इत ज्ञान सुनाय कै क्यों उर जारौ।
चेरी चुभी चित मैं हित सों अब प्रीति की रीति करी प्रतिपारौ॥
नागरता इतनी नटनागर या ब्रज के हित तौ मत धारौ।
थीं तो बिकाऊ न लेत बनीं, अब पूछत क्यों तुम मोल हमारौ॥

उपर्युक्त सवैया की अन्तिम पंक्ति में बड़ी मीठी फटकार का प्रादुर्भाव हुआ है। 'नागर' की नागरता पर गोपियों ने जो कटाक्ष किया है वह भी अपूर्व है। गोपी-उद्धव-संवाद पर ब्रजभाषा के प्रायः सभी पुराने कवियों ने रचना की है। महात्मा सूरदास का गोपी-उद्धव-संवाद अनूठा है। उक्त संवाद पर बिहारी, मतिराम, देव, तोष, पद्माकर, घासीराम, आलम आदि सभी शृंगारी कवियों की उक्तियाँ हैं। ग्वाल कवि ने भी एक गोपी-पचीसी बनाई है। आधुनिक कवियों में 'रत्नाकर' जी, का 'उद्धवशतक' प्रसिद्ध है। नटनागर जी के गोपी-उद्धव-संवाद का वर्णन अपने ढंग का निराला है। उसमें गोपियों की अगाढ़ प्रेमभक्ति है, विरह की वेदना है, कातरता है, तन्मयता है, मृदुल फटकार है और सर्वत्र सरसता है।

जितने मुख बैन कढ़ैं रस चूवत, ते सब हीं चुनिबोई करैं।
धरि ध्यान हिये नटनागर सो गुन तेरे लला गुनिबोई करैं॥
निसि द्यौस जहाँ तहाँ सीस सदा धरैं धीरज ना धुनिबोई करैं।
फिरि ज्वाब न देवो हमैं तौ कहा, कछु कैवो करैं सुनिबोई करैं॥

इस छंद में नायिका की स्मृति और जड़ता की दशाओं का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। प्रियतम की जिन रसीली बातों का नायिका को अनुभव था, विरह की अवस्था में वे उन्हीं का स्मरण कर रही हैं। स्मरण करते-करते वे इतना ध्यान-मग्न हो गई हैं कि उन्हें अपनी यथार्थ दशा भी भूल गई है। जड़ता-दशा का उसमें पूरा समावेश हो गया है। अंतिम पंक्ति में जड़ता का विकास पूरे तौर से हुआ है। नायक उपस्थित नहीं है फिर भी वह जवाब की बात सोचती है। हाँ! जड़ता में 'अचलता' की बात भी रहती है। वह यहाँ नहीं है; इससे कदाचित् जड़ता की अपेक्षा इसे 'प्रलाप' कहना भी अनुचित न हो, परंतु प्रलाप की बातें असंबद्ध होती हैं। यहाँ बातों का सिलसिला ठीक है। अलंकारों की दृष्टि से स्वभावोक्ति का छंद में सुन्दर सत्कार है। पद-पद से स्वभावोक्ति की आभा फूट रही है। "जवाब न सही कुछ तो कहो उसी को सुनकर दिल बहले" इस उक्ति में सरसता और स्वाभाविकता का अपूर्व संगम है। गंगा-जमुना के इस समागम में कातरता की सरस्वती भी छिपी हुई है। भाव की यह त्रिवेणी अपूर्व है। इस सरस सवैया के प्रसंग में 'आलम' कवि की यह उक्ति भी पढ़ लीजिए:—

जा थल कीन्हें विहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥
आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन में जे सदा बसते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं॥

दोनों उक्तियों में वेदना का जो सुकुमार दर्शन सुलभ है, वह अनूठा है। दोनों कवियों की वर्णन-शैली भिन्न है। नायिका की दशा में भी दोनों छंदों में अन्तर है। दोनों कवियों का वर्णन अनूठा है

सुधि दै हैं इतै ये गुलाब प्रसून त्यों अंबहु मौर दिखावहिंगे।
अरु कोकिल-कीर-कपोत-कलापि, महा मधुर स्वर गावहिंगे॥
नटनागर बागन आगि-सी लागि है, धावन भौंर हूँ धावहिंगे।
इतने हैं वकील हमारे सखी, का बसंत पै कंत न आवहिंगे॥

वसंत-ऋतु का शुभागमन हो चुका है अथवा होने पर है। नायिका के 'कंत' विदेश में हैं। विरहिणी को वसंत के उद्दीपनों का पता है। उसको विश्वास है कि जिस समय विदेश में उसके 'कंत' गुलाब का विकास देखेंगे, आम का बौर उनकी निगाह में पड़ेगा, पक्षियों का मधुर-मधुर गान उनके कान में गूँजेगा, जब वे देखेंगे कि लाल टेसू फूलकर प्रज्वलित अग्नि की समता कर रहा है और भौंरे गुन-गुन करते हुए इधर से उधर दौड़ रहे हैं तब उनसे वहाँ रहते न बन पड़ेगा। वे घर को अवश्य लौट आवेंगे और वसंत का सुहावना समय उन्हीं के साथ कटेगा। नटनागर जी ने नायिका की इस उक्ति को बड़ी ही सरस और मधुर भाषा में प्रकट किया है। नायिका की उक्ति में विश्वास, कातरता एवं भोलेपन का बड़ा ही सुन्दर समन्वय हुआ है। इतने 'वकीलों' (सहायकों) के रहते हुए (गुलाब, बौर, भौंर एवं पक्षि-कलकूजन) यदि नायिका दृढ़ता के साथ अपनी सखी से पूछती है कि "का बसंत पै कंत न आवहिंगे?" तो वह यही उत्तर चाहती है कि अवश्य आवेंगे। प्रश्न पूछने का ढंग उसके दृढ़ विश्वास को पूर्णतया स्पष्ट कर रहा है। परन्तु इस प्रश्न में कातरता और वेदना भी छिपी हुई है। उसके वियोग-दुख की 'आह' इन प्रश्नों के शब्दों के साथ कराह रही है। "इतने हैं वकील हमारे सखी का वसंत पै कंत न आवहिंगे" इस वाक्यावली में नायिका का भोलापन भी उबल रहा है।

छाँड़त ना पल येक अकेलिन, पौढ़त हौ परजंक पै दंपत।
आपके पाँव पलोटति है वह, वाके पदान लला तुम चंपत॥

ऊधव यों कहियो समुझाय कै, वाही कौ नाम अहो निसि जंपत।
कूवरी कौ नटनागर जू करि, राखी भली तुम सूम की संपत॥

इस उक्ति में उपालंभ का विनोद बहुत बढ़िया है। भाषा चुभते हुए उपालंभ के सर्वथा अनुरूप है। गोपियों ने इस फटकार में श्रीकृष्ण जी के साथ कुछ भी रू-रियायत नहीं की है। कूवरी के पैर चापने की बात कह कर तो भारी उपहास किया गया है। श्रीकृष्ण जी 'नटनागर' ही हैं। उधर कवि का नाम भी 'नटनागर' है। इस सवैया में 'नटनागर' का प्रयोग ख़ूब चुस्त हुआ है। 'सूम की संपति' लोकोक्ति भी मनोरम है। कूवरी के प्रति कृष्ण-चन्द्र के प्रेम में गोपियों ने स्त्रैणता और विलासिता का आरोप किया है। कूवरी का प्रेम सूम की संपत्ति के समान है। इसमें यह ध्वनि है कि नटनागर जी गोपियों से प्रेम नहीं करेंगे। क्योंकि ऐसा करने पर उस प्रेम में कमी आ जायगी। पर सूम इस कमी को कैसे अंगीकार कर सकता है। सूम अपनी सम्पत्ति को कभी अकेला नहीं छोड़ता, सदा अपने साथ रखता है। उसे बार-बार सँभालता है। ख़ूब हाथों से टटोल कर देखता है कि उसमें कोई कमी तो नहीं हुई है। सदा ध्यान उसी में लगा रहता है। श्रीकृष्ण जी भी कूवरी को बराबर साथ रखते हैं। उसी का गुणगान करते हैं और उसके स्पर्श में सुख मानते हैं। ऐसी दशा में सूम की संपत्ति से उसकी तुलना कितनी चुस्त और चुभती हुई है, इसके साक्षी सहृदयों के हृदय हैं।

१३—चामनिया के प्रति

राजपूताने में अपने किसी प्रिय सेवक को सम्बोधित करके कविता करने की चाल है। चामनिया को सम्बोधित करके नटनागर जी ने भी कुछ दोहे कहे हैं:—

थल जल माँहे थाप, जिका रकम जाणै जगत।
पहुँच्या जिका न पाय, चित सूँ भूल्या चमनिया॥

दूजा पूजे देव, भेद न जाणे बेद भण।
साईं हँकेण सेव, चित सूँ जाणे चमनिया॥

जिका तणी की जात, पशुपत लख्यो न नागपत।
रोवे छे दिन रात, च्यार मुखा सूँ चमनिया॥

दूसर भज्या न आध, कमलपूत लिखिया करम।
भटक्या ज्यारे भाग, चौरासी लख चमनिया॥

दूजा भजसी देव, कारज सिध न हुवे कधी,
साँचा श्री हरि सेव, च्यार भुजा भज चमनिया॥

रातब खावै रौड़, पान जीयाँ नाहीं पड़ै।
करे घणा मन कोण, चंढा ऊपर चमनिया॥

देणों मरणों दोय, हर भजणो कुलवट हलण।
जनम सुफल कर जोय, च्यार बात सूँ चमनिया॥

परत कपूत कपूत, सँकट साह चालै सड़क।
सूबर नार सपूत, चालै ऊभट चमनिया॥

राची किण बिध राम, मुवाँ पिछे कहौ कुणे।
आणि नरपुर महिं नाम, चारण राखै चमनिया॥

धन धन धरनी धेठ, पचे न रोखग पाण विन।
पचे घणों अन पेट, चूरण खाँदा चमनिया॥

मिले न मेल कुमेल, जात ऊँच नीची जका।
सारोइ नाह सूँ मेल, चन्या खर ज्यूँ चमनिया॥

तीखो पड़ता ताव, सजना कारण शीश पर।
ज्याँरो कदी न जाय, चोल बोल रंग चमनिया॥

प्रगट न पाले प्रीति, घट अनीति ज्यारे घणी।
रहे कवण विध रीति, चित वहु रंगी चमनिया॥

आखर हुवे अँधार, चाँद जिता दिन चाँदणों।
जीवन धन जमवार, च्यार दिना रो चमनिया॥

१४—अश्व-विचार

नटनागर जी ने घोड़ों के सम्बन्ध में भी कुछ रचना की है, उसके भी कुछ नमूने दिये जाते हैं:—

अटके छिपे अरु आभा होय, खाँचे खींचे काटे सोय॥
संग छोड़ आगे नहिं निकसै, साई गैल पड़ो मत उसके॥
सूम के वीच होय टीका रे, सो मत लीजो प्रीतम प्यारे॥
ये घोड़ा कहिये ना रहला, तीस को नहीं खरीदो मोला॥
फेल चस्म घोड़ा नहिं लीजै, नाहर नेत्र कमीना छीजै॥
मानव आँख गुलाली होय, सो घोड़ा मत लीजो कोय॥
मूसा मृग-सी जाकी आँख, जाको लेना होइ निसांक॥
सुक वाँसा चंचल जो होय, तली ऊट-सी लेना सोय॥
जिसका पेट भेंस-सा होय, ऐसा घोड़ा लेना जोय॥
मृग सी नली ऊँट से कान, ऐसा तुरी खरीदो जान॥
मुह माफिक दीजै अहलाण, माँगे मारन रखणा काण॥
ऐसी रीति रखे सो वाजी, देखण हार होय सब राजी॥
वाहु भाँवरी श्रेष्ठ कहावै, ऐसा तूरी ढूँढ़ ते पावै॥
सो नृप के असवारी जोग, सो यह मिलै न प्राकृत लोग॥
उत्तम मध्यम अधम तीन, गरदन के लच्छन हैं प्रवीन॥
उत्तम धातु कसी कर जानो, चखते कोते एक प्रमानो॥
तिनको सुद्ध करे अहलान, चढ़े ना सुधरेगा पहचान॥
कमर को चोंकर जो भी होय, ये लगाम विन नमें न दोय॥
मुख के जीते ऐव के काण, सो नहिं सुधरे विन अहलाण॥
मुख को देख लगाम चढ़ावै, तो हय के सारे सुख पावै॥

१५—राजा राजसिंह जी के संग्रह में प्राप्त छन्द

महाराजकुमार रत्नसिंह जी के पिता भी सत्कवि और कविता-प्रेमी थे। अपने पढ़ने के लिए उन्होंने सरस छन्दों का एक संग्रह तैयार करवाया था। उस संग्रह की एक हस्तलिखित प्रति मुझे सीतामऊ के राजकीय पुस्तकालय में देखने को मिली। इस प्रति में 'नटनागर' जी के कुछ ऐसे छन्द हैं जो 'नटनागर-विनोद' में नहीं हैं। संभव है वे 'नटनागर-विनोद' के ग्रन्थ-रूप में आने के बाद बने हों। नटनागर-विनोद में प्राप्त छन्दों में कवि की प्रतिभा का जैसा दर्शन होता है उससे इन छन्दों में कहीं कहीं पर प्रतिभा की प्रौढ़ता अधिक है। भाषा भी अधिक सुलझी हुई है। इसलिए वे सब छन्द भी यहाँ पर दिये जाते हैं:—

(१)

नीके नील पंकज-पलास वत नैनन तैं,
नेह नटनागर उमंग अरसो परै।
हाउ भरे अंग त्यौं अनंग रस रंग भाउ,
भावती की बातनि पियूष परसो परै॥
बृन्दाबन रानी ब्रजरानी महारानी मन,
राधे रूपरासि तैं उजास सरसो परै।
भाग भरे भाल अनुराग भरे आनन तैं,
राग भरी माँग तैं सुहाग बरसो परै॥

(२)

जोरी है समाज संग बाजत मृदंग झाँझ,
केसरि कौ रंग औ गुलाल भरि झोरी है।
मेलो लै गुलाब आछो अतर अबीरहू लै,
फैली है सुगंध चारों ओर ब्रजखोरी है॥

टारत दुकूल मुख मीड़त मचावैं सोर,
दै दै करतारी सब लोकलाज छोरी है।
आइ बरजोरी नटनागर कहो री टेरि,
ये हो वृषभानु की किसोरी आजु होरी है॥

(३)

होरी को सु-सोर सुनि कीरति कुमारी कौल,
करिकै निकुंज तैं सिधारी धरि बाड़ि हौं।
बीरन की सौं हरी बबा की सौंह गोरस की,
होरी मैं हरेक भाँति हरि-कौंर माड़ि हौं॥
आँजि दृग अंजन निरंजन न राखौं नाम,
केसरि कपूर लै कपोल मुख माड़ि हौं।
तौ हौं वृषभानु की किसोरी व्रजगोरिन मैं,
आजु नटनागर नचाइ नीके छाँड़ि हौं॥

(४)

गोरे गात जात रूप देखत लजात जल,
जात जत जात के गुनोघ दिन थोरी है!
राधे व्रजबंस की निसान नटनागर यों,
वृंद वनितान के गुलाल भर झोरी है॥
झेल पिचकारिन पछेल गन गोप लये,
गाढ़े गहि गोविंद धमार धधकोरी है।
चोली पहिराइ चारु चूनरी उढ़ाइ ताल,
कर सों बजाइ बाल बोलै लाल होरी है॥

(५)

ऐंड़ भरी अमित उमैड़ अरबीली बाम,
आनै तिन कान्ह कौं सुता पै छिति-पालकी।

पकरि नचावैं पग नूपुर रचावैं इक,
एकै आँजि अंजन बजावैं करताल की ॥
एकै लई बाँसुरी बिषान बनमाल छीन,
एकै दई बिंदिया लगाय निज भाल की ।
फौज रितुराज की फतूह कुसुमायुध की,
फाग राधिका की या फजीहति गुपाल की ॥

(६)

एकै एक ओर तैं अनूप आतपत्र लीन्हें,
एकै चौंर चंद्र से दुरावैं वेस थोरी के ।
एकै पान पीकदान एकै पानदान लीन्हें,
एकै पान पाँवरी करंड रंग रोरी के ॥
एकै बीजना डुलावैं नागर नवीन एकै,
नागरी नचावैं लाल नाचैं बीच गोरी के ।
एकै कहै हरुवा गरयरुवा ब्रजगोरि,
कोहो हरि भडुवा हजार भाँति होरी के ॥

(७)

बिर्जा लई बाँसुरी बखान नटनागर त्यों,
बिसन बिसाखा लै बजाई करताल की ।
ललिता नै लकुट छुमाइसा हू कुंडल नै,
सेली लई लाडिली बुलाक छबिजाल की ॥
चित्रित किये हैं चंद्ररेखा नै कपोल चत्तु,
चंद्रावलि चंद्रिका लगाई निज भाल की ।
फौज रितुराज की फतूह कुसुमायुद्ध की,
फाग राधिका की या फजीहति गुपाल की ॥

(८)

गोरी को सु गरब गुमान बरजोरी कर,
गूजरी गहेली अंग ऊजरी उताल की।
आईं बीच वेष के बिलास नटनागर त्यों,
घेरि घनस्याम कौं रही हैं छवि जाल की॥
बाढ़ी अँग उमंग अनंग-रस-रंग फाग,
जंग जय गावैं तै बजावैं करताल की।
होरी की हला पै हला बोलि कै झला को झला,
नंद के लला पै मूठि मेलतीं गुलाल की॥

(९)

छैल की छली हैं या चली हैं गाँउ गोकुल तैं,
वैस मैं बली हैं नटनागर अबाधा कौं।
थिरकी थली हैं दिल भव की दली हैं दिव्य,
अद्भुत अली हैं या मिली हैं साधि साधा कौं॥
फूलन फली हैं काकी देखति गली हैं इत,
पुन्य दै मिली हैं काहली हैं भाई भाधा कौं।
नंद की लली हैं फाग खेलन चली हैं भरी,
भाग सौं भली हैं जो मिली हैं आइ राधा कौं॥

(१०)

कैसे तो पजी हैं धन्य भाग जीमजी हैं तोहिं,
तोतन छजी हैं सो विचारै भव भेव से।
नैकु न लजी हैं न रजी हैं नंदराइ जी न,
बीर बरजी हैं जे न जानत गगेव से॥
माइने सजी हैं ब्रज सरस तजी हैं नट-
नागर भजी हैं उर जाके जीव खेव से।
गोकुल गजी हैं बरसाने लौं बजी हैं बलि,
मैया भले भैया वे कन्हैया बलदेव से॥

(११)

कुसल कुसल डफ बाजै ब्रजमंडल मैं,
ग्वालमंडली मैं सदा कुसल घनी रहै।
गाइन के बगर वछेरू बैल बृन्दावन,
भानु भूप कीरति की कुसल तनी रहै॥
त्यों ही नटनागर जसोदा नन्द गोकुल के,
लोग औ लुगाइनी की कुसल भनी रहै।
माथौ मनमोहन कौ कुसल बिराजै यह,
माँग लाड़िली की सदा कुसल बनी रहै॥

(१२)

नैकु न लजात लीने बसन लुगाइन के,
तापै नटनागर बिलौकौ यहि ओर हौ।
बनिक बिचारो बटपार के मिले ते जिमि,
मन मैं बिचारै का करैया बड़े भोर हौ॥
मास व्रत नियम नसैहै व्यर्थ जैहै फल,
दोष लगि रैहै लाल देखे का कठोर हौ।
आखिर अहीर बिन पीर के न मीर बड़े,
बंधु हलबीर के हमारे चीर चोर हौ॥

(१३)

वैसहीं नृसंस कंस क्रूर कौन जानत हौ,
तापर कुचाल का चलाओ जोर जुल की।
अबला बिचारी नटनागर उघारी कँपैं,
मास-व्रतधारी पथचारी पुन्य पुल की॥
मानौ जो न मोहन तौ दोहन समेत जैहौ,
गोधन तुम्हारी बात ह्वै है तूल तुलकी।
खोये देत रोहिनी जसोदानंद जू की लाज,
कान्ह काहली की गोपकुल की गोकुल की॥

(१४)

कैसी ब्रजवासिनी हौ ब्रत की विलासनी हौ,
तुम उपहासिनी हौ लीनो पाप कर पैं।
वरुन जलेस तुम्हैं करिहैं कलेस तातें,
मानौ उपदेस ये दिनेस देव सिर पैं।
दोनों कर जोरौ इन्हैं अंग न सकोरौ नट-
नागर न थोरौ लै पधारौ चीर घर पैं।
तुमकौ सु सौंह नीको समौ मोहिं दोहनी कौ,
रोहिनी रिसैहै माइ मुसली महर पैं॥

(१५)

माथे फटो फेंटा कसे कामर कछेटा जात,
जन्म अहिरेटा वने वेटा वड़े ज्ञानी के।
गायन के खेटा वैल वाछरू समेटा तुम्हैं,
तिनसों न छेटा ते प्रचारौ पाय प्रानी के॥
औरहिं वतावै ज्ञान आपु तौ अगाऊँ आनि,
वैठे लै सुजान वास वनिता विरानी के।
जैहैं नंदद्वारे हम कंस पै पुकारैं नट-
नागर वनैंगी ना निहारे राजधानी के॥

(१६)

रोहिनी-समेत नंदरानी जी सिहानी सुनि,
तेरो नाम सुजस सराहैं जो जसीलौ है।
दौरि दरवाजे पौरि पाँउड़े विछाए मोद,
मंगल मनाय गीत गाये जे जहीलौं है॥
छाजे की सु छाँह मेरी वाँह गहि गोदी धरि,
आरती उतारी नटनागर अलीलौं है।
नीलमनि मानिक चुनी के हार हीरन के,
वारे माँ पचास साठि सत्तर असीलौं है॥

(१७)

सीस गहि मेरो मुखचंद सों उजेरो कहि,
हेरो गात गोरे कौ गुराय कहि घीके की।
रोहिन हरै कै हँसि हेरि कै कन्हैये मोहिं,
ठाढ़े करैं दोनों घन दामिनि मिलीके की॥
कीरति सिहानी नटनागर कहानी सुनि,
स्यानी कछु भोरी बतरानि मुख नीके की।
हारे सब सुकवि बिचारे तैं न आवै उर,
उपमा बतावै का बिचारे चंद फीके की॥

(१८)

बोलि कै बरोठे तैं जसोदा नंदराय जी कौ,
मोद कौ महोदधि मठा मैं ल्याइ छाने मैं।
हरि हँसि बोलि नटनागर सनेह कीन्हें,
देह सर सुकृत सरोज सरसाने मैं॥
मेरी सौंह महर बिलोकौ नैकु नेरे आइ,
नजरि बचाइ वाकी मेरे स्योह साने मैं।
कामधनु भौंहैं मुग्ध मोहैं मन सौंहैं हरी,
राधा बिस्व बिजय विभूति बरसाने मैं॥

(१९)

याके रूपरासि के प्रकास सौं न चंपौ चारु,
सोनजुही सोनौ कौ न केतकी कितैहै का।
गात की गुराई त्यों अलाप मृदु मंजुहास,
कोमल सुवास अंग रति कौं हितैहै का॥
महर सुनौ हौ मेरी गुजर गरीबनी की,
चंदचूर चारानन चाह कौं चितैहै का।
दैकै दैव मोहन कौं मोहनी मनोहर या,
मोहिं नटनागर त्रिलोक मैं जितैहै का॥

(२०)

या है केसपास जो विसाल माल मोती गुहे,
या है सीस जाके मैं जराउ नग टीको है।
जाके दृग दीरघ दरारे कजरारे उग्र,
कानन कतारे लौं प्रकास लखि जी को है॥
बोले नंदराय नैकु लाँची सी दिखात साँची,
गोरे गात पातरी पुनीत तन ती को है।
बैठक बिछौना नटनागर निरौना कौन,
हौंना कर छौना कौ दिखानो भाग नीको है॥

(२१)

रूप के प्रकास प्रति अंगन उजास कीने,
थोरे वय मंदहास मिटत अँध्यारी है।
भोरे भाउ भाँउती वतान मैं अपानपनौ,
सूचित सयान नैकु सानँद सिधारी है॥
तैसी पुनि चपल चितौनि चप चंचल की,
ललित लजीली नटनागर तिधारी है।
मंत्र मनियारे कान्ह कारे पै वसीकर कै,
लीने नंद गोप गेह गारुड़ी पधारी है॥

(२२)

मंच मनि जटित मनोहर मयूख मंजु,
तखत सरौट नटनागर सुहाती दै।
लाड़िली लड़ैती सुकुमार प्रानप्यारी सीय,
कहिकै दुलारी दुलराई मानमाती दै॥
पूरी पूप पुरट परातन मैं पकवान,
साकर छुहारे छीर मेवा मिष्ठनाती दै।
नैलपल गोलक समान मुँहिं राखि माई,
गादी पर गोद मैं गरे सों गात छाती दै॥

इन छंदों में राधाकृष्ण की स्तुति अथवा उनकी प्रेमलीला का बड़ा सरस वर्णन है। श्री राधा जी के फाग का वर्णन तो अनूठा है। कई छंद तो इतने सरस बन पड़े हैं कि उनको बार बार पढ़ने की इच्छा होती है। छंद न० ६ के अंतिम पद में छंदोभङ्ग दिखलाई पड़ता है। संभवतः यह लेखक-प्रमाद है। इस छंद का भाव भी कुछ सुरुचिपूर्ण नहीं है। इन छंदों की कुछ अंतिम पंक्तियाँ बहुत बढ़िया बन पड़ी हैं। थोड़े-से उदाहरण लीजिए।—

१—भाग भरे भाग अनुराग भरे आनन तैं,
राग भरी माँग तैं सुहाग बरसो परै।
२—फौज रितुराज की फतूह कुसुमायुध की,
फाग राधिका की या फजीहति गुपाल की।
३—होरी की हला पै हला बोलि कै झला कौ झला,
नंद के लला पै मूठि मेलती गुलाल की।
४—नंद की लली हैं फाग खेलन चली हैं भरी,
भाग सों भली हैं जो मिली हैं आय राधा को।
५—माधो मनमोहन को कुसल बिराजै यह,
माँग लाड़िली की सदा कुसल बनी रहे।
६—आखिर अहीर बिन पीर के न मीर बड़े,
बंधु हलबीर के हमारे चीर चोर हौ।
७—कामधनु भौंहैं मुग्ध मोहैं मन सौहैं हरी,
राधा बिस्व बिजय बिभूति बरसाने मैं॥

१६—उपसंहार

संयोग-शृंगार के वर्णन में लोकमर्यादा के सदाचार-संबंधी भावों की रक्षा का पूरे तौर से ध्यान रखना कुछ कठिन काम है।

जिस समय कवि के हृदय में रस की तरंगें उठती हैं, उस समय उनके प्रबल वेग पर शासन कर सकना बड़े संयम का काम है। संसार के अधिकांश शृंगारी कवि इस रसावेग से प्रभावित होकर सदाचार के नियमों का अतिक्रमण करते हुए पाये गये हैं। ब्रजभाषा के पुराने कवि भी इस व्यापक रसवेग के प्रवाह में स्वच्छन्द होकर बहे हैं। सदाचारी भावों का अतिक्रमण उन्होंने कुछ अधिक किया है। यह तथ्य है और इसको अस्वीकार करना और येन केन प्रकारेण उसका समर्थन करना दुराग्रह है। हम यह मानते हैं कि कवि का काम कविता करना है, सदाचार का उपदेश करना नहीं, फिर भी यदि वह अपने काव्य में सदाचार की मर्यादा का आदर करे तो सोने में सुगंधि का आविर्भाव हो जाय। 'नटनागर' जी ब्रजभाषा के पुराने शृंगारी कवियों के मार्ग पर ही चले हैं, इसलिए उनके छन्दों में सर्वत्र सदाचारी संयम की छाप नहीं है। 'नटनागर-विनोद' के पाठकों को यत्र-तत्र ऐसे उदाहरण ग्रंथ में मिलेंगे।

नटनागर जी ने पुराने कवियों की उक्तियों को अपनाकर उनमें विलक्षणता और नूतनता उत्पन्न करने का भी उद्योग किया है। उनकी मौलिक उक्तियाँ सरस हैं। यत्र-तत्र भाव-सादृश्य होते हुए भी उन्होंने अधिकतर अपनी सूझ का ही पर्याप्त परिचय दिया है।

नटनागर जी की कविता में अधिकतर ब्रजभाषा का आदर है। फिर भी कहीं-कहीं पर मालवा की प्रान्तीय भाषा की झलक भी दिखलाई पड़ती है। ऐसे स्थल बहुत कम हैं।

नटनागर जी की रसमयी सूक्तियों में थोड़ी बहुत ऐसी भी हैं जिनमें वर्णन उतना उत्कृष्ट नहीं है जैसा कि भाव। जहाँ पर भाव और वर्णन दोनों एक समान हैं, वहाँ पर चमत्कार भी गंभीर है।

नटनागर जी की सब कविता एकरस नहीं हुई है। कोई कोई उक्ति तो बहुत ही अच्छी है और कोई-कोई साधारण।

वेंकटेश्वर प्रेस-द्वारा मुद्रित 'नटनागर-विनोद' को देखने से जान पड़ता है कि ग्रंथ किसी क्रमविशेष को लक्ष्य में रख कर नहीं बनाया गया है। एक प्रकार से वह कवि की सूक्तियों का संग्रह है और संग्रह में भी किसी क्रम का अनुसरण नहीं किया गया है। प्रस्तुत 'नटनागर-विनोद' में पूर्व प्रकाशित पुस्तक के क्रम में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर दिया गया है।

नटनागर जी की कविता के सम्बन्ध में, अन्त में, यही कहना है कि अपने समय के साहित्यिक वातावरण के अनुकूल उनकी रचना सुन्दर और सरस है। शृंगार-रस का चमत्कार उनकी कविता में ख़ूब है। ठाकुर, बोधा, पद्माकर, द्विजदेव आदि के छंदों में जिस प्रकार रस की फुहार छूटती है नटनागर जी भी वैसे ही रस से परिप्लुत दिखलाई पड़ते हैं।

'नटनागर-विनोद' का रचना-काल संवत् १९१३ है। संवत् का दोहा ग्रन्थ में मौजूद है।

प्रस्तुत 'नटनागर-विनोद' में प्राय: सवा पाँच सौ छंद हैं। अधिक संख्या सवैया और घनाक्षरी छन्दों की है। नटनागर जी ने दोहों की अपेक्षा सोरठे अधिक बनाये हैं। उनके सोरठे बड़े सुन्दर हैं। बरवै छन्द में भी अनेक भाव सजाये गये हैं। उर्दूवह्न से मिलती-जुलती कुछ शृंगारमयी रचना है। इसमें खड़ी बोली का रूप विकास पाता हुआ दिखलाई पड़ता है। छन्दों की गणना में नीसाणी और राग आदि भी सम्मिलित हैं।

'नटनागर-विनोद' एक बार लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस में और दूसरी बार श्री वेंकटेश्वर प्रेस में मुद्रित हो चुका है। परन्तु दोनों ही संस्करणों में छपाई की शुद्धता पर ध्यान नहीं दिया गया है। लेखक के प्रमाद से अथवा प्रेस के भूतों (Printer's devil) की

कृपा से अनेक छन्दों में छन्दोभंग दोष भी मौजूद हैं। संस्कृतज्ञ संशोधकों ने व्रजभाषा के शुद्ध शब्दों को भी संस्कृत के शुद्ध रूप में विठलाने का उद्योग किया है। शब्द एक दूसरे से अलग न रहने के कारण पाठकों को छन्दों के पढ़ने में भी कठिनता पड़ती है। इस संस्करण में इन त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

सीतामऊ के वर्तमान नरेश अपने पूर्वजों के बड़े भक्त हैं। हिन्दी-कविता से भी उनका प्रगाढ़ प्रेम है। अपने पूर्वजों की यशोरक्षा की प्रवृत्ति एवं हिन्दी-कविता के प्रेम से प्रेरित होकर उन्होंने 'नटनागर-विनोद' के नूतन संस्करण के प्रकाशन की व्यवस्था की है। ग्रन्थ के सम्पादन में मेरे जैसे अल्पज्ञ के सहयोग की राजा साहब ने इच्छा प्रकट की। मुझसे भी जैसा कुछ हो सका ग्रंथ को प्रकाशन के योग्य बनाने का प्रयत्न किया है। यदि यह काम विशेष विद्वानों के हाथ से होता तो और भी सुन्दर रूप में पाठकों के सामने आता। अब जैसा कुछ बन पड़ा है हिन्दी-कविता-प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित किया जाता है। यदि पाठकों को पहले की अपेक्षा अब की बार के छपे 'नटनागर-विनोद' के पढ़ने से कवि की रचना के रसास्वादन में कुछ भी अधिक आनन्द प्राप्त होगा तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

अन्त में अत्यन्त नम्रता के साथ मैं 'नटनागर-विनोद' को कविता-प्रेमियों के कर-कमलों में उपस्थित करता हूँ।

सीतामऊ
ज्येष्ठ १९९१ वि० } कृष्णविहारी मिश्र

नटनागर-विनोद

श्रीमान महाराज कुमार श्री रत्नसिंह जी महोदय "नटनागर"
भू० पू० युवराज सीतामऊ (मध्यभारत)।

नटनागर-विनोद

कवि की दीनता

(१)

जाप जपौं निज जीहहु ते,
ततो कर्म अनेकन ते तुतरा हौं;
आप अमापरु थापउ थाप मैं,
पाप अनेकन को पुतरा हौं।
हौं सुथरा पर-पंच के स्वांग मैं,
और सु कर्मन ते उतरा हौं;
दीन हौं, दीन हौं, दीन महा,
नटनागर के घर को कुतरा हौं॥
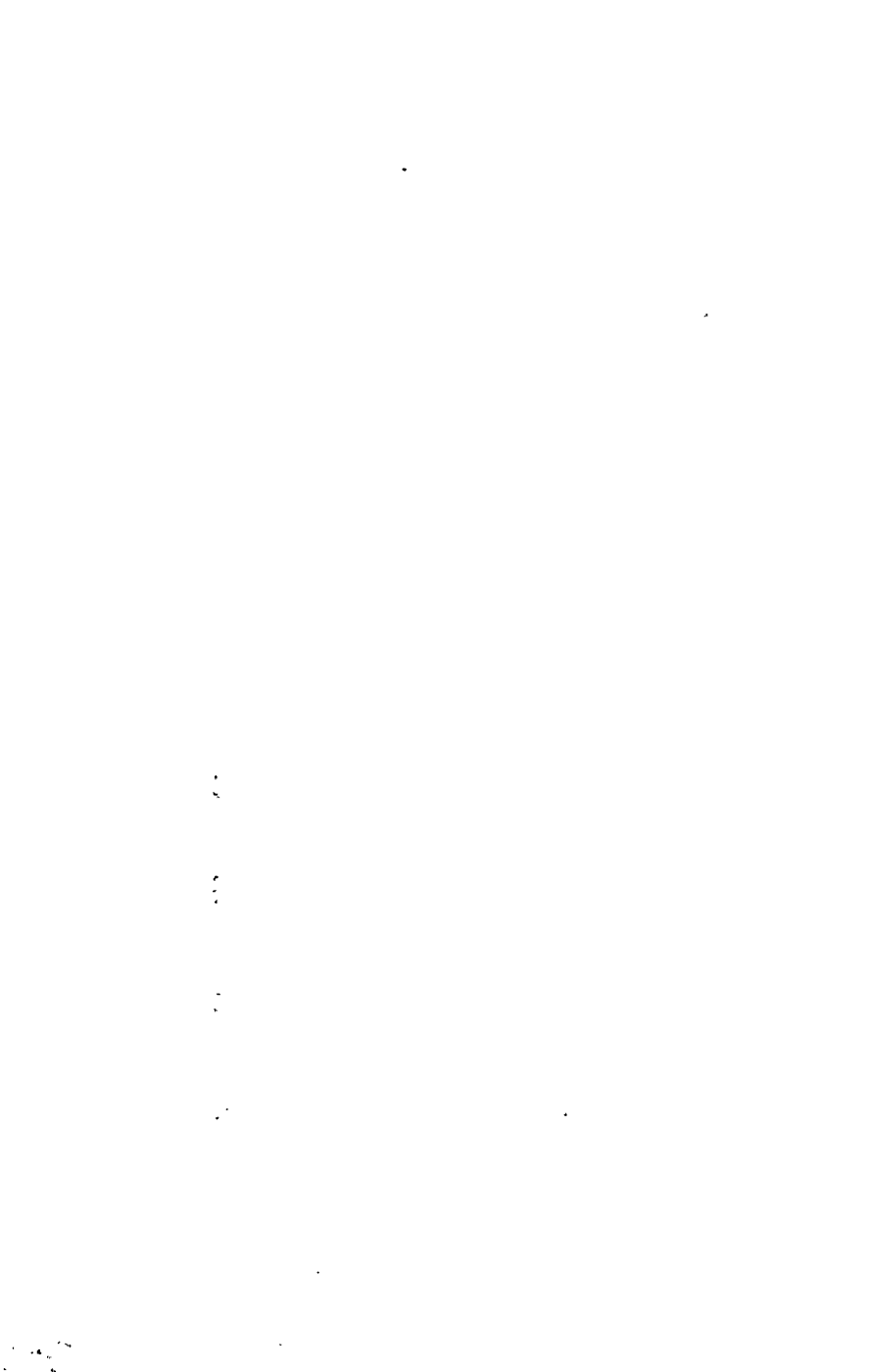
(२)

गुरु-वन्दना

गुरु-वन्दना

काहू कहि कै ना लियो, गुरु-महिमा को पार।
यों बिचारि कैसे रहूँ, तदपि लिखूँ हिय हार॥

जय गुरु श्रूप दिनेस जगत-पाखंड-विहंडन।
जय गुरु श्रूप दिनेस तिमिरि-अघ-जुत्थ-विसंडन॥
जय गुरु श्रूप दिनेस सुजस-पंकज-सुख-मंडन।
जय गुरु श्रूप दिनेस दुष्ट-मति-बुद्धी-दंडन॥
जय जयति श्रूप अकरन-हरन, करन करावन दास कहँ।
जय जय दिनेस अज्ञान-हर, ज्ञान करन अज्ञान जहँ॥

जय जय श्री गुरु श्रूपदास निज-पंथ-हलावन।
जय जय श्री गुरु श्रूप चारि युग धर्म-चलावन॥
जय जय श्री गुरु श्रूप बाल-बुद्धी-बुधि-दावन।
जय जय श्री गुरु श्रूपदास के कुकृत-नसावन॥
जय जयति श्रूप व्यापक अखिल, सुगुन देन अवगुन-हरन।
जय जयति श्रूप पंकज-चरन, जगवंदन तारन-तरन॥

जय श्री गुरु जग-जनक सृष्टि-जड़-चेतन करता।
जय श्री गुरु हरि एक जगत के पालन भरता॥
जय श्री गुरु हर रूप हरन-ब्रह्मांड-निकाया।
जय त्रिगुनात्मक एक श्रूप मंडित-छल-माया॥
जय जय सुरेस संतन सुखद, दुष्ट-दंडदा वेद भन।
गुरु हरिहि एक मूरति कहत, जाते मैं एकत्व गन॥

जयति सच्चिदानंद श्रूप के रूप विराजत।
जयति सच्चिदानंद श्रूप भूपन सिर गाजत॥
जयति सच्चिदानंद जूप रथ धर्म सुलग्गन।
जयति सच्चिदानंद खलन उर दाह सुदग्गन॥
जय जय अनंत अंत न कहत, वेद सेष विधि हर सहित।
याही निमित्त मों नित्त गुरु, और न धारत मोर चित॥

जय जय जय गुरु श्रूप सर्व-अघ-ओघ-नसावन।
जय जय जय गुरु श्रूप द्वंद-पाखंड-मिटावन॥
जय जय जय गुरु श्रूप हरन-विषया-विष-दुर्मद।
जय जय जय गुरु श्रूपदास को देन अभय-पद॥
जय जय उदार आधार मम, विधि हरिहर गुरु एकमय।
जय जयति श्रूप तारन तरन, जय जय जय गुरुदेव जय॥

जय गुरु-तेज प्रचंड वेद-मरजाद-सुमंडन।
जय गुरु-तेज प्रचंड तिमिरि-पाखंड-विहंडन॥
जय गुरु-तेज प्रचण्ड घोर-अघ-ओघहि-खंडन।
जय गुरु-तेज प्रचंड दुष्ट-मति-दानव-मंडन॥
जय दीनबंधु दासन सुखद, जय कुबुद्धि के करन लय।
जय जयति अनूप तारन तरन, जय जय जय गुरुदेव जय॥

जय गुरु अनूप दिनेस कंज-दासन-प्रफुलावन।
जय गुरु अनूप दिनेस चक्क-संतन-मन-भावन॥
जय गुरु अनूप दिनेस सर्व जग के सुख-करता।
जय गुरु अनूप दिनेस कलुष दासन के हरता॥
जय अनूप रूप कारन-करन, जय हरि-हर-त्रिगुनात्ममय।
जय जयति अनूप तारन-तरन, जय जय जय गुरुदेव जय॥

जय गुरु व्यापक रूप आदि मधि अंत न जाके।
रंग न रूप न रेख ग्राम धन धाम न ताके॥
वेद न जानत भेद कौन वाके गुन गावैं।
ब्रह्मा सेष महेस खोज हेरे नहिं पावैं॥
जय एक अखिल आधार जग, विश्व रूप ब्रह्मांडमय।
जय जयति अनूप तारन-तरन, जय जय जय गुरुदेव जय॥

जय गुरु सूच्छम रूप एक जु अनेक कहावत ।
जय गुरु सूच्छम रूप पार कोऊ नहिं पावत ॥
जय गुरु सूच्छम रूप व्योममय उपमा जाकी ।
जय गुरु सूच्छम रूप कौन जाने गति ताकी ॥
वयराट रूप गावत निगम, निज दासन (दाता) अभय ।
जय जयति भूप तारन तरन, जय जय जय गुरुदेव जय ॥

श्री गुरु मेरे इष्ट और कोउ मिष्ट न लागत ।
श्री गुरु मेरे इष्ट और कनिष्टहि त्यागत ॥
श्री गुरु मेरे इष्ट ज्येष्ठ काहू नहिं जानूँ ।
श्री गुरु मेरे इष्ट श्रेष्ठ औरैं पहिचानूँ ॥
श्री गुरु-प्रताप मति भ्रष्ट ना, धृष्ट कियो सब मेंटि भय ।
जय जयति भूप तारन-तरन, जय जय जय गुरुदेव जय ॥

गुरु आदि वाराह गुरु नरसिंह कहाये ।
गुरु राम-द्विजराम गुरु कछ-मीन सुहाये ॥
श्री गुरु वावन-रूप कृष्ण हयग्रीव सु जानहु ।
गुरु बोधि-अवतार-रूप कारन पहिचानहु ॥
इक गुरु सर्व अवतार गिनि, जगपालन करता सुलय ।
जय जयति भूप तारन-तरन, जय जय जय गुरुदेव जय ॥

गुन तीनिहुँ ते रचना जग की, सब अंतर आपहि छाजत है।
फिरि एक हि आप अनेक दिखावत, त्यों फिरि एक हि भ्राजत है॥
सोइ आदि सोई मधि अंत कहावत, आप सबै सिर गाजत है।
कोऊ आप के रूप ते बाहर ना, सब आप को रूप बिराजत है॥

महिमा गुरू की सोई हरि की विचारि लिखूँ,
यामैं बिंग दूषन बतावै अज्ञ जानै का।
दोउन की महिमा मैं वेदहू न कीन्हों भेद,
जाहिर अखेद इत चर्म चख मानै का॥
दृष्टि मैं न आवै ज्ञान चसमा चढ़ाये बिन,
एक रु अनेक रूप रूपन बखानै का।
आप सो ही आप जाको रूप है अनूप देखो,
देखिबै मैं आवै सोई जाहिर है छानै का॥

वह धूम ते भीन है, पीन पहार ते,
मीन के मारग सो बतलावत।
तहाँ आदि न मध्य न अंत कहूँ,
रँग रूप न रेख अलेख चलावत॥
कोऊ गावै हजारन जीभहु तैं,
तऊँ हारि रहै पर पार न पावत।

सोई रूप अखंड विराजत है,
बुधिवान सोई नर रूप को गावत ॥

श्रीगुरु-प्रताप साँचो कहत सुनाय सब,
कृपा की कटाच्छ साँच झूँठ धरिबो करैं।
हम तौ गुनी न निगुनी हैं आदि अंत ही तैं,
रूप के समीप रहैं याते रहिबो करैं ॥
विद्या को अभ्यास न अविद्या को करैं उपाय,
महा जड़ मूढ़ देखौ यो हीं भिरिबो करैं।
चतुर सभा मैं जाय चाह बाढ़ै सब ही की,
वित्त नहीं पास पै कवित्त करिबो करैं ॥

(३)
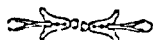
व्रजराज-वन्दना

(२)

ब्रजराज-वन्दना
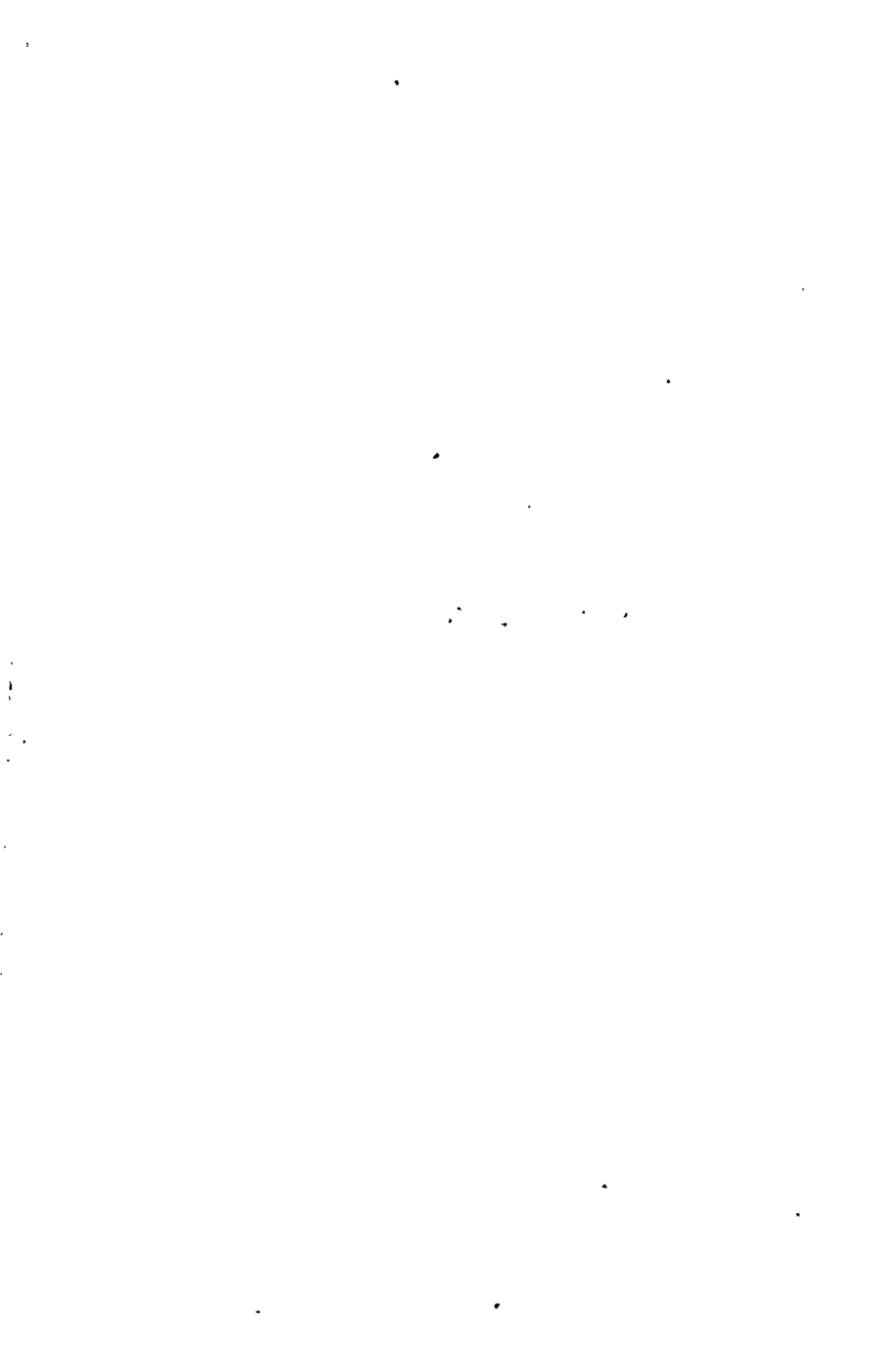
व्रजराज-वन्दना

गहि बाँधे जसोमति ऊखल सों,
तिनको चित छोभ सह्यो करिये।
घुँघुरारे लटा भरे गोरस सों,
भये धूसर धूर बह्यो करिये॥
नटनागर चाह चढ़ी चित मैं,
तिनको चित चारु चह्यो करिये।
अहो माखनचोर यही छवि सों,
मम आँखिन बीच रह्यो करिये॥

मोर के पाँखन को सिर भूषन,
काँखन बेत गह्यो करिये।
तुव ता छिन की छवि कैसे कहौं,
लखि लाखन मैन दह्यो करिये॥
नटनागर माखन चीखन हीं,
नित दाखन स्वाद लह्यो करिये।
अहो माखनचोर यही छवि सों,
मम आँखिन बीच रह्यो करिये॥

गुँजरा हियरे विहरै तन सोभित,
धातु विचित्र लह्यो करिये।
बँसुरी वनमाल कँधा कमरी,
लकुटी कर वीच गह्यो करिये॥
नटनागर मोरपखा सिर भूषन,
गोधन संग वह्यो करिये।
अहो माखनचोर यही छवि सों,
मम आँखिन वीच रह्यो करिये॥

मघवा जब कोप कियो व्रज पै,
वहै कोप को लोप वह्यो करिये।
गिरि को कर धारि उवारि कै गोधन,
गोप रु गोपी चह्यो करिये॥
नटनागर वेनु धरी अधरानहीं,
प्रीति वियोग सह्यो करिये।
अहो माखनचोर यही छवि सों,
मम आँखिन वीच रह्यो करिये॥

चल केसव धाय धरी मथनी,
नवनीत भरे सु चह्यो करिये।

इत देहरी द्वार खरी जसुदा,
सुत छाँछ भरे सु लह्यो करिये ॥
नटनागर लाल सुनो इतनी,
अब मैं जो कहूँ सु कह्यो करिये।
अहो माखन चोर यही छवि सों,
मम आँखिन बीच रह्यो करिये ॥

श्री व्रजचंद गोविंद गुनी,
जगवंद हैं जाहिर फंदु को फंदु है।
कुंद के हार हिये बिहरैं,
अरबिंद-से लोयन रूप को द्वंदु है ॥
मंद महा मुसकानि अहो,
नटनागर नागर वृन्द को इंदु है।
छंदु को छंदु है जिंदु को जिंदु है,
नंदु को नंदु अनंदु को कंदु है ॥

व्रज सरवर जाकी पैज वृद्ध नंद जू की,
वृच्छ गुरु लोगन के तट पर वृन्द हैं।
बात है अजब नटनागर मैं कहा कहूँ,
रचना अनोखी और गुन सब फंद हैं ॥

आनंद के कंद पिक चातक कविंद सब,
याही जस गायबे को बानी मति मंद है।
विमल तरंग जामैं जस की अनेक उठैं,
ब्रजबाल जलज हैं भ्रमर मुकुंद हैं॥
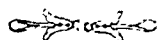
(४)

उद्धव-गोपी-संवाद

उद्धव-गोपी-संवाद

प्रेम-पत्र गोपीन प्रति, ज्ञान-युक्त कहि गाथ।
कहत कृष्ण-प्रति पुनि कथा, सुनि हरि होत सनाथ॥

ऊधो बिसरि गई सब बातैं।
वे नँदनंदन दूरि बसत का मथुरा निकट यहाँ तैं।
कबहुँक तौ याहू दिसि आते मात पिता के नातैं॥
छुटन न पावत राज-काज ते का विधि आवैं यातैं।
अब जानी इत लाज लगति है ब्रज बिच बदन दिखातैं॥
और सबै तुम सों पूछैंगे निसा कछू यक जातैं।
नटनागर के हाल सुना दो कुबरी जुत कुसलातैं॥

सारे ब्रजसों मैं बैर बिसाह्यो, नाथ मैं पाती दै पछितायो।
का जानैं तुम कहा लिख्यो थो जाको फल मैं पायो॥
जित जित जायँ कहूँ नहिं आदर महा अजस सिर छायो।
माधौ मैं पंडितपन तजि कै उनको गायो गायो॥
सीख सुनाय कही सब हम सों काहू मन न पत्यायो।
उमड़ो प्रीति घटा दसदिसि तैं बरषि प्रवाह बढ़ायो॥

भरि भरि ढरत ढरत फिरि भरि भरि उमँगि उमँगि झरि लायो।
ज्ञान-भक्ति-वयराग विचारे यक पल माँझ वहायो॥

ह्वाँ न चलै ब्रह्मादिक हू की करैं आपनो भायो।
कोउ ना सुनै कहैं कछु हू ना चलै कहा समुझायो॥
पूछै कवन कहै को उनते नाहक फँस्यो खिंचायो।
आपुस बीच करैं मिलि वतियाँ रोरहि रोर मचायो॥
कुविजा कूर कंस की दासी वासो मन उरझायो।
यहाँ कौन रोकत थो उनको वहाँ जाय क्यों छायो॥
वे अक्रूर क्रूर मति उनके उद्धव सहित गिनायो।
हा हा खाय पाँय सवके परि मुसकिल छोर छुरायो॥
प्रेम-पयोधि मगन सव वै तौ वृथा मोहि पठवायो।
वे उनमत्त मत्त प्रेमहिं मैं कोउ न और मत भायो॥
नटनागर कछु कहत वनै ना उनको कौल निभायो॥

उद्धव तैं पुनि प्रस्न किय, कृष्ण अतृप्त कृपाल।
यह कौतुक मम सुनन हित, का वोली व्रजवाल॥

सुवसीठिहु रावरी फीटी परी,
यह जोग की चोटी जरी सो जरो।

ब्रजवासी ते प्रीति उपासी भये,
इनकी जग हाँसी करी सो करी ॥
अहो ऊधो जू सूधो सो मारग छाड़िकै,
भाड़ क्यों होहिं अरी सो अरी ।
नटनागर तौ निरबंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

समुझावत कौन कहा समुझै,
हम तौ यह बानि बरी सो बरी ।
दुखिया सुख लाभ न हानि कहा,
बिधि रेख लिलार धरी सो धरी ॥
अहो ऊधव जापै यों जोग लिख्यो,
यह जोग नहीं है अजोग करी ।
नटनागर तौ निरबंध भए,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

नहिं ग्राम सों धाम सों काम कछू,
हम नेह के नग्र ढरी सो ढरी ।
कुलकानि रु लोक की लाज सों आज,
उजागरि होय टरी सो टरी ॥

अहो ऊधो कितीक कहैं तुम सों,
अब तो यह प्रीति भरी सो भरी।
नटनागर तौ निरवंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी॥

यह प्रीति की रीति प्रतीति सुनी,
कछु नीति अनीति खरी सो खरी।
तुम जानत नाहिं अजान भये,
कछु भाग्य की रीति फरी सो फरी॥
अहो ऊधव जू निसि द्योस यहाँ,
कोऊ बूड़ी सो बूड़ी तरी सो तरी।
नटनागर तौ निरवंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी॥

उत जाय उजागर वै तौ भये,
हम नेह के नेम छरी सो छरी।
वहि जीवन मूल तौ जोग लिख्यो,
हम प्रीति के रोग मरी सो मरी॥
हमको वयराग उन्हें अनुराग,
न सोच कछू है हरी सो हरी।

नटनागर तौ निरवंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

यह आये थे क्रूर अक्रूर यहाँ,
उन सों भरि पेट लरी सो लरी ।
वह वेद पुरान की रीति कहैं,
इत नैन सों नीर झरी सो झरी ॥
हम हारे न टेक टरै कबहूँ,
यहि प्रीति-पयोधि गरी सो गरी ।
नटनागर तौ निरवंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

रस-ग्रंथ की रीति कुरीति भई,
विपरीति के पंथ चरी सो चरी ।
उत कूबरी नीति-निधान भई,
इत और हि घाट घरी सो घरी ॥
जहँ ऊधव से अकरूर मुसाहिब,
साहिबी रीति सरी सो सरी ।
नटनागर तौ निरवंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

कहाँ कौन से वेद पुरान के वाक्य,
अवाक्य सों प्रीति फरी सो फरी।
यह पाती न छाती पै काती धरी,
हमरी सुनि बुद्धि गरी सो गरी॥
ब्रजवास ते ऊधो प्रवास करो,
अब खूब ही छाती दरी सो दरी।
नटनागर तो निरबंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी॥

मति गोकुल की कुल की तजिकै,
भरि कै उर चेरी भरी सो भरी।
हम तौ बिगरी सिगरी ब्रज-ग्वालिनी,
होहिं सुरी न नरी सो नरी॥
अब याहि को सोच सकोच नहीं,
सब प्रीति के पंथ डरी सो डरी।
नटनागर तो निरबंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी॥

कहाँ कौन से नेम कहाँ कुल कौन सो,
कौन सी जाति धरी सो धरी।

कहौ कौन से सासुरो पीहर कौन है,
प्रीति के रंग गरी सो गरी ॥
हम ऊधव काज सबै सो तजे,
वहै वा विधि देखो करी सो करो ।
नटनागर तौ निरबंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

वह प्रीति जसोमति की परित्यागि,
सखान पै हानि करी सो करी ।
अरु नंद के भाग्य किये मतिमंद,
सो वृद्ध की सुद्धि भली बिसरी ॥
कितने गुन औगुन कैसे कहैं,
कहते यह जीभ अरी सो अरी ।
नटनागर तौ निरबंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

जब दानी ह्वै माँगत थे दधि दान,
न देत थे जापै खरी सो खरी ।
वह मीठो सो गाय बजाय के बाँसुरी,
नाच नचाय के दासी करी ॥

फिरी हाहा खवाय निभाय कै नेम,
अनेम ह्वै लागि मरी सो मरी।
नटनागर तौ निरवंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी॥

फिरि फागु में वा अनुराग रंगे,
रु सुहाग गुलाल डरी सो डरी।
अति प्रीति अबीर सुबीर समेत,
उड़ावत धुंध अरी सो अरी॥
जिहि सों अब लाजत राजत ह्वाँ,
यहाँ जोग के साज जरी सो जरी।
नटनागर तौ निरवंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी॥

जब कुंज कछार कलिंदी के कूल पै,
फूल के फाग में गोद भरी।
फिरि राग सुने अनुराग रँगी ह्वै,
सुहाग की कीच अनेक झरी॥
सुख सारे गिने यक चेरी के साथ,
या बात ते देह जरी सो जरी।

नटनागर तौ निरवन्ध भए,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

वहाँ दासी खवासी के पास रहैं,
उपहास की वात न जीय धरी।
विन जोग लिखे हम साधत जोग,
या रोग सों देह गरी सो गरी ॥
अव उद्धव हारे हहा तुम सों,
रहिये चुपचाप करी सो करी।
नटनागर तौ निरवंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

वहै बाँसुरी को सुनि आँसुरी कानन,
कानन धीर कवौं न धरी।
न घरी कहुँ चैन परै घर मैं,
मन मैं न वियोग अधीर करी ॥
वह वानि विहाय विकाय गये,
हमैं हाय यही की भुलाय मरी।
नटनागर तौ निरवंध भए,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

व्रजरानी तौं आज विरानी भईं,
　　　　पटरानी सुहानी सी कुब्ज करी।
वहै चेरी रची चित की लखि चातुरि,
　　　　आतुरि सों करि प्रीति वरी॥
अब वाही सों नेह निवाहिये जू,
　　　　वह पाय के भागहि ते उवरी।
नटनागर तौं निरवंध भये,
　　　　हम प्रेम के फंद परी सो परी॥

वहै क्रूर कलंकिनी कंस की दासी,
　　　　उपासो है वाके सहैं दुखरी।
नहिं चैन परै पल देखे विना,
　　　　हरियायल ज्यों पकरी लकरी॥
अहो उद्धव नेम न प्रेम को जानत,
　　　　देहौ सुनाय पुकार करी।
नटनागर तौं निरवंध भये,
　　　　हम प्रेम के फंद परी सो परी॥

कवों प्रेम को पंथ पिछानते तौ,
　　　　नहिं ठानते या व्रज सों जु करी।

कुलटान के फंद फँदे हैं फबे,
हमैं चैन भयो सुनिकै सगरी ॥
इत ऊधव जू पठवायो अरे,
हुलसै हिय बात सुने तुमरी ।
नटनागर तौ निरबंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

हम प्रीति की रीति प्रमान सुने,
गनिका गज गीध हु त्यों सवरी ।
कपि कीट किरात विख्यात है बात,
सुयाहि तैं नेक न जीय डरी ॥
फिरि ध्रू प्रहलाद विभीषन से,
मन धारि कै नाथ यों भीर करी ।
नटनागर तौ निरवंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

हम सूधो को टेढ़ी गनी गनिका,
वा त्रिवंक को अंक धरी सो धरी ॥
फिरि वाहो को आयसु पाय अहो,
निसिराज के काज सुधार तरी ।

जिनके हित हाय बसीठ भये,
तुम्हैं लाज न आज भई जवरी।
नटनागर तौ निरबंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी॥

नवनीत के चोर निहाल भये,
निधि कूवरी पाय उजागर री।
यहै भाल की बात विचारिये जू,
बिच कूप परे गुन-सागर री॥
फिरि लाज न आज लौं ताकी कछू,
भये नंद के बंस उजागर री।
नटनागर तौ निरबंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी॥

पसु पंछिन प्रेम के नेम सुनो,
जलहीन न जीवति है सफरी।
मृग मोर चकोर अहो अलि हू,
फिरि चातक कंज तथा मकरी॥
चक चंद लखे अति होत है मंद,
कुमोद के वृंद महा सुख री।

नटनागर तौ निरबंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

ब्रजवास ते आज उदास भये,
यहाँ दास रु दासी न थीं सगरी ।
रहि बाकी खवासी में हाँसी करी,
यह लागत है हमको विष री ॥
अब ऊधव यों समुझाय सुनाय,
कहो ब्रजबाला तो यों झगरी ।
नटनागर तौ निरबंध भये,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥

ब्रजबासी महादुखरासी भये,
तुम दासी बिलासी की छाप धरी ।
यहै हाँसी है फाँसी कथान हमैं,
तुम दोनु ही एक समान करी ॥
ब्रजधीस कहाय कै कूबरी ईस,
कहावत लाज तरी सगरी ।

नटनागर तौ निरवंध भए,
हम प्रेम के फंद परी सो परी ॥*

उद्धव जू मन जो उमग्यो उत;
तौ इत हू उर बीच उछाह थो ।
चेरी रुची उनको लखि चातुरी,
चोप कहा चित को उत चाह थो ॥
प्रीति की रीति करी न करी,
नटनागर सों कहो कैसो निवाह थो ।
जो हम सों हित हानि कियो,
ततौ भूलिबो वा हरि कौन सौं साह थो ॥

छाँड़त ना पल एकौ, अकेले;
न पौढ़त हैं परजंक पै दंपत ।
आपु के पाँव पै लोटति है वह,
वाके लला पद हौ तुम चंपत ॥

नोट *—संवत अष्टा दस सतक, गे सत्यानू और ।
स्रावन सुक्क त्रयोदसी, भई पचीसी भोर ॥

इस दोहे के अनुसार उपर्युक्त २५ सवैया छंद संवत् १८९७ में वनें जब रतनकुमार जी २२ वर्ष के थे ।

उद्धव यौं कहियो समुझाय कै,
वाही को नाम अहोनिसि जंपत।
कूबरी को नटनागर जू करि,
राखी भली भले सूम की संपत॥

पूरव रीति भई सो भई फिरि,
छूटि छुटाय गई नहिं मानी।
ये ब्रजलोग उचारत यों,
नँदलाल विके अरु येहू विकानी॥
प्रीति तुम्हैं हमैं टूटि गये की,
प्रतीति भई सब को यह जानी।
जा दिन ते नटनागर जू करी,
रूप सिरोमनि कूवरी रानी॥

हम जानती हैं लरिकापन ते,
जिनके छलछंद सबै रस-रीती।
जोग की पाती लिखी नटनागर,
जानि चुकी पहिचानिहु वीती॥
उद्धव और सुनी है कथा अब,
पागे हैं स्याम वहाँ कोऊ तीती।

पीय नये औ नई हैं प्रिया वे,
नये नये पंथ नई नई प्रीती ॥

सुनिये जदुवंसी हैं राजकुमार,
हमैं कछु ना पहिचानिहैं जू ।
तुम पाती लिखाय कै लाये इहाँ,
ठग हौ किधौं साह न काम है जू ॥
उलटे फिरि जाइये ह्वै है अबेर,
किधौं यह रावरी वानि है जू ।
उत वे नटनागर नंद के नंदन,
उद्धव प्रान समान हैं जू ॥

अहो उद्धव चेरी सुनी है नई,
नटनागर को सुखदायन है ।
वह क्रूर कलंकिनी रानी करी,
ब्रजवासिन को दुखदायन है ॥
अनुराग उतै वयराग हमैं,
अरु ज्ञान इहै मन-भायन है ।
वहि कूबरी को सब नायन बोलत,
नायन नाहिं कसायन है ॥

जा दिन सों वह नारि मिली,
तब ते नित जीव वधावने बाँटैं।
वे नटनागर हैं भँवरे तव,
क्यों डरिहैं कहो केतकी काँटैं॥
यों ब्रजबाला करैं बतियाँ जहाँ,
ऊधो सनान करैं नद घाटैं।
और सखी नई एक सुनी,
ब्रजराज बिके टुक चंदन साँटैं॥

लोक कुल वेद लाज जाहि ते अकाज कीन्हीं,
जाके रस प्रीति बीच सघन सने रहौं।
तोर्‌यो हित इत तैं सु जोर्‌यो उत नयो नेह,
जाहू को न सोच पोच भृकुटी तने रहौं॥
कूबरी भई है रानी हम तौ बिगानी हाय,
तऊ बिन दामन की दासिका गने रहौं।
नागर जू छेम जुत आपु जग कोटिक लौं,
चित्त की लगन जहाँ मगन बने रहौं॥

आये इत उद्धव लिखाय लाये जोग-पत्र,
आपन का सीख चेरी देखे जीजियतु है।

नागर जू प्रीति की प्रतीति की न रीति जानैं,
देखौ री अनीति राजकाज कीजियतु है ॥
केतिक गिनावैं पै न पार पावैं यादि ऐसी,
एक ना अनेक सुनि वातैं रीझियतु है ।
मथुरा में आजु कालिह ऐसी सुनि पाई माई,
कूबरी कन्हाई की दुहाई दीजियतु है ॥

ए हो जदुचंद ह्याँ पठाये आपु ऊधव को,
सो सब सुनाई हाय यों उत धसे रहौ ।
कैसे जगवंद रु कहाये ब्रजचंद देखौ,
कुलटा के उर निस वासर बसे रहौ ॥
नाम नटनागर धरायो क्यों न आई लाज,
नंद जू के नंद इत भृकुटी कसे रहौ ।
आसिष अमंद ऐसे कहैं ब्रजबाला बृंद,
मंद कूबरी के मृदु फंदन फँसे रहौ ॥

बसोठी के काम धाम मथुरा के बीच जाको,
आयो यहि गाम नाम जाहिर सुनायो गाय ।
मुक्ति काज जोग वयराग की लै आयो पाती,
छाती अति तातीं होति जाके बाँचिबे को पाय ॥

नागर न दूरि हैं हमारे घट पूरन हैं,
याहू पर देखिये जू इतनो अन्याय हाय।
मोहन सिखावते तौ सारी मिलि सीखि जातीं,
ऊधव सिखावैं ज्ञान कौन विधि सीख्यो जाय॥

आप भले आये साथ पत्र हू लिखाय लाये,
सब मन भाये गाये जात न गलानी है।
हम हैं गवाँरी बेसवारी सब ब्रजवारी,
भारी मतवारी एक सुनी कान वानी है॥
नागर जू सागर तौ गागर समावै नहीं,
हम हैं उजागरी उचारे जामैं हानी है।
ऊधौ कहा ज्ञानी तुम अब लौं न जानी हाय,
जैसी उन ठानी सो तो अकह कहानी है॥

वृन्दाबन वीच ऊधो संक गुरु लोगन की,
मथुरा प्रवेश कै कै निपट निसंक भो।
ललित त्रिभंगी नटनागर कहाय हाय,
बंक दासी संग बैठि चित हू त्रिवंक भो॥
कंबू पय गंग की तरंग ते महान सुभ्र,
जस को समुद्र ऐसो वृथा जुत पंक भो।

चंद्वंसी अवतंस मोहन मयंक सुद्ध,
　　पुरानी प्रकासी वीच कूवरी कलंक भो॥

कहा कहौं आप की या बुधि को,
　　गुन के तुम लाल जू सागर हौ।
वहि कूवरी को पटरानी करी,
　　अगुनी हरि जू गुन आगर हौ॥
नहिं देखि परै तुम से अब लौं,
　　निकलंक कलंक में आगर हौ।
वहै जाति कुजाति की कूवरी मैं,
　　नटनागर वंस उजागर हौ॥

अहो उद्धव या विधि जाय कहो,
　　अब कूवरी सों प्रथमादि मैं को है।
सुरलोक भुलोक रु और तलातल,
　　सातहु दीप को दीपक सो है॥
नरी असुरी सुरी ताहि पै वारिये,
　　सोहनी मोहनी मूरति जो है।
भली जोरी मिली नटनागर जू,
　　जो अलेख हैं आपु अजातिहि वो है॥

कामिनि ऐसी लखी न सुनी,
तिन्हैं छाड़त ना तुम आठहु यामिनि।
या मन मैं तुम भाय गये अरु,
छाँड़ि दये घर के पुर धामिनि॥
धामिनि ढाक की छाई कुटी,
नटनागर जू वहै कूबरी भामिनि।
भामिनि में बसि कीन्हें भले,
हद कीन्ही लला कूबरी पर-कामिनि॥

वे पतियाँ लिखिभे भेजति याँ,
मत की छतिया कतिया-सी खगी है।
का कहिये उनकी गति को,
इत की तजि आसिकी चेरी सगी है॥
वे नटनागर का निरदोष,
त्रिदोष-भरी-सन प्रीति पगी है।
आजहि कालि सुनी हम तो,
वह कूबरिया अब कान लगी है॥

कुबरी अंग निहारिकै, रीझे थे नँदलाल।
होस जिन्हैं कछू हीं नहीं, हालहि ते बेहाल॥

हालहि ते वेहाल, स्वप्न द्वारापुर आयो।
चौंकि चकित ह्वै रहै, रूप चेरी को छायो॥
नटनागर धरि ध्यान, लिखत तन दुवरी दुवरी।
आधे आधे वोल कढ़त, "हा कुवरी कुवरी"॥

ऊधव को पठये उत तें इत,
ज्ञान सुनाय कै क्यों उर जारो।
चेरी चुभी चित मैं हित सों,
अव प्रीति की रीति करी प्रतिपारो॥
नागरता इतनी नटनागर,
या व्रज के हित तौं मति धारो।
थीं तो विकाऊ न लेत वनी,
अव पूछत क्यों तुम मोल हमारो॥

नित कानन सों मृदु वैन सुनैं,
अरु नैनन रूप निहारत हैं।
फिरि आनन सों अति सुंदर नाम लै,
आपुस वीच पुकारत हैं॥
अहो उद्धव काहे प्रलाप उचारत,
स्याम उहाँ कोऊ धारत हैं।

नटनागर प्यारो हमारो हमैं,
पल एकहू नाहिं बिसारत हैं ॥

ऊधव लिखाय लाये ज्ञान वयराग जोग,
रोग सो दिखात हमैं नाहिं कछु आस है।
नेम जो कियो है नटनागर उपासना को,
व्रत न टरैगो देखौ जौ लौं घट स्वास है ॥
कान्हर कहावै कौन वाको हम जानै नाहिं,
कान्हर हमारो ऐसी लिखें बड़ी हाँस है।
कान्हर तिहारे तैं हमारो कछु काम नाहिं,
कान्हर हमारो तौ हमारे प्रान पास है ॥

तुम जो बतावत हौ नंद के दुलारे वहाँ,
ये हू बात झूठ जिन कहो ब्रज सारे मैं।
वे हू कोऊ और ह्वैहैं नाहिंन परेखो कछू,
दूषन लगावत हौ हाय प्रान प्यारे मैं ॥
नागर जू करत हमारे संग नृत्य नित,
बाँसुरी बजावत हैं जमुना किनारे मैं।
मोहन तुम्हारो तो तुम्हारे मथुरा के बीच,
मोहन हमारो तो हमारे नैन तारे मैं ॥

ए हो द्विज पाँय परि पूँछत हौं तोसों प्रस्न,
मेरे भाग लिखी बातें जाहिर दिखाय दे ।
गनित निकारि नेकु करिये विचार हा हा,
मिंत को संजोग सुधा कानन सुनाय दे ॥
मेरे धाम बीच जेतो धन सो धरूँगी आगे,
केती है अवधि दुख दारुन की गाय दे ।
कारो नँदवारो नटनागर भयो है न्यारो,
प्यारो मिलिवे की मोको साइति बताय दे ॥ ✓

नीर दै मनोरथ की प्रेम वेलि पारी एक,
जाकी गति ऐसी देखो छिन मैं भई है हाय ।
मोको हुती लालसा निहारिवे की फूल फल,
भई निरमूल जाको कैसे दुख कहूँ गाय ॥
ताहू पर उद्धव जू आय कै अन्याय बोलैं,
कौन पै सुनाऊँ समझाऊँ कित कहौं जाय ।
नागर जू नेकहू निहारते तौ जानते जू,
रावरो कुपथ मृग जरहू ते गयो खाय ॥

जन्म सिसुताई औ किसोरताई पाई यहाँ,
गिनी का अनेक कीनी ब्रज मैं जिती फजीत ।

वंसीवट जमुना के नाहिंन वखाने फेल,
लोक कुल वेद कानि गोपिन की गई वीत ॥
ऊधो नटनागर जू पाती दै पठाये आप,
जाहि पै लिख्यो है जोग जानी नहिं कोऊ नीत।
कालिह ही पधारे जाको काल हू न वीते कछु,
मोहन हमारे आज गावत तुम्हारे गीत॥

ऊधौ जी क्यूँ लाया कागद कपट भर्‍या।
जो अकरूर करी सोइ जाणी थाँरा करत कर्‍या।
नटनागर ना और भरोसो विसरायाँ विसर्‍या ॥*

कहत लजावाँ छाँजी ओगुण थारा।
उत्तम प्रीति की रीति न जाणों नीच प्रीति वस ज्याँरा।
नटनागर छो जी थाँ निरगुण क्यों रीझो गुण म्हाँरा॥

ऊधो फेर पधारे हो व्रज में।
प्रथम आय उर जार गये थे कछुक रहे अव जारैं।
ऊधो वेगि सिधारो व्रज तें तुम जीते हम हारैं।
नटनागर सों यों जा कहियो कुवज्या को न विसारैं॥

---

* परज।

ऊधो जी करो छो आछी वाता कूड़ी ।
ज्ञान भक्ति वैराग सिखाओ ये क्यूँ लागै रूड़ी ।
नटनागर पण जोग लिखे छे प्रेम रीति सब बूड़ी ॥

माधो जी पठाई पाती ज्ञान भरी ।
प्रेम सुधारस मूर लिख्यो ना विष की पोट धरी ।
नटनागर इत की सुध विसरी कैसी कठिण करी ॥

ऊधो जी थाँरो सो मण तेल अँधेर ।
जोग सिखावत भोग कमावत वा कुबजा की बेर ।
नटनागर छे चोर जनम का सकै प्रकास न हेर ॥

न पूछ्यो तुम गोपिन ते प्रेम नगर को पंथ ।
नटनागर कछु रीति न जानी हो कुवज्या के पंथ ॥
न पूछ्यो तुम गोपिन ते प्रेम नगर को पंथ ।*

ऊधा जी विसारी ह्याँ नै मथुरा जाय ।
ह्याँ तो प्रीति करी छी वासूँ कुल की रीति गमाय ॥
नटनागर सारी सुद भूल्या कुवज्या दौलत पाय ॥†

* ठुमरी मुलतानी ।

† खम्माच ।

(५)
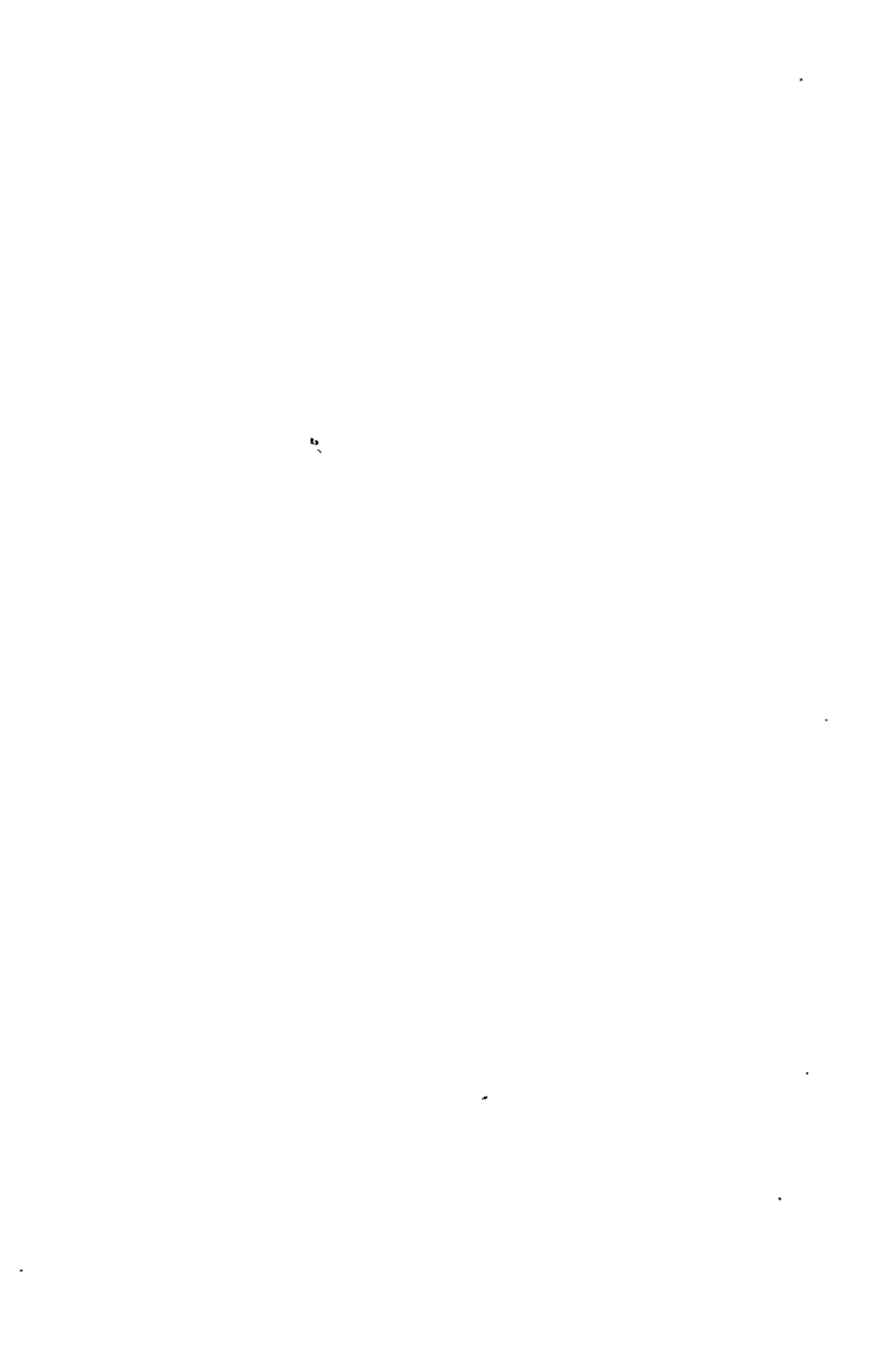
शृङ्गार-सौरभ

श्रृङ्गार-सौरभ

१—संयोग

ललिता पठाई लाल लाड़िली विलोकिवे को,
ललित लुनाई अंग अंग में अनेक हैं।
सोहत सुहाग अनुराग-भरे आनन पै,
भाग-भरी भौंह बीच कोटि मदनेक हैं॥
ए हो नटनागर ! तिहारी सौंह साँची कहौं,
सारे भुवमंडल बिधाता रची एक हैं॥
प्यारी के नयन अनियारे कारे कजरारे,
मृग-मीन-कंज-खंजहू ते बितरेक हैं॥

आजु बनवारी एक अजब उचारी बात,
कछू ना बिचारी पै उजारी बाग यारी की।
जाहिर जनाई बनि आई निज अंगवान,
अगनि गनाई लाज आई ना हकारी की॥
सागर समीप आय बैठे नटनागर जू,
निपट निसंक बातैं तऊ बिभिचारी की।
सबन ते प्यारी प्रिया प्रिया हू ते प्यारे प्रान,
प्रानहू ते प्यारी मोको प्रीति प्रानप्यारी की॥

एक छिन जाम सम जाम दिन मान सम,
दिन निसि मान मास संवत रचावै ना।
त्यों ही खान पान न्हान गान लौं अज्ञान मो कों,
तेरो हिय ध्यान छाँड़ि आन दिसि जावै ना॥
पारसी पुरान रु सितार आदि साहित लौं,
चित को रचाऊँ तो पै याके मन भावै ना।
हाहा नटनागर तिहारी सौंह साँची कहौं,
रावरो वियोग मो को श्रीधर दिखावै ना॥

इतते उतते नित वाही के द्वार पै,
प्रेम-तरंग को टूम्यो करै।
नहिं और तियान की ओर लखै,
भिरकै तऊ दाँवन भूम्यो करै॥
छिन देखे विना नटनागर को,
चित वास अकास न घूम्यो करै।
वह प्यारी के कंठ विलूम्यो करै,
मुख चूम्यो करै त्यों ही झूम्यो करै॥

सागर सरूप को उजागर लख्यों मैं आजु,
नागरि को नागर जू भूमै ज्यों करै समा।

स्रवन सुनी है सती सरसुती पारवती,
सचीहू बिरंचि पची होय न हुई रमा ॥
जच्छी नगी पन्नगीरु गंधरवी कैसे कहौं,
हारी मति हेरि हेरि जकिसी रही जमा ।
कीरति कुमारी जाकी समता बिचारी नारी,
रतिक रती को रूप, तिलसी तिलोत्तमा ॥

बाहर बिहरिबे की बानि जो वहाऊँ तऊ,
बिरह-वियोग-विथा विवस बढ़ी रहै ।
कानि कुलकानि की कहा निरखिबे को जऊ,
कढ़त कठोर कंठ आह तो कढ़ी रहै ॥
पचि पचि पाचि पाचि मौन ही पढ़ाऊँ जो पै,
प्यारे की प्रसंसा तऊँ रसना पढ़ी रहै ।
नागर जू चतुर चवावन चलावै ज्यों ज्यों,
त्यों त्यों तेरी चाह चित चौगुनी चढ़ी रहै ॥

काहू पै सीस गुहावत हौ,
नटनागर केस मैं गूँथत रोरी ।
काहू के पाँय लगावत जावक,
काहू पै आपु लगावैं बुँदोरी ॥

झाँकत ताकत खेलि खिलावत,
　　है मति तौ छलछंद मैं बोरी।
काहे को नंदकिसोर भये तुम,
　　क्यों न भये लला नंदकिसोरी॥

एक तौ घटा अनूप नागर सिखी की कूक,
　　बीजुरी लता के उपमित छवि न्यारे हैं।
अरुन दुपट्टा जासौं सुगंध लपट्टा उड़ै,
　　मारुत झपट्टा देत गति को बिसारे हैं॥
औघट घटा पै गिरै तिनको थटा सो होत,
　　चंदमुख ऊपर लटा ज्यों नाग कारे हैं।
आजु या अटा पै दोऊ कर में पटा से पैन,
　　कौन धौं छटा से हाय कटा करि डारे हैं॥

चंद के उजारे मतवारे नटनागर त्यों,
　　सीतरु सुगंध मंद फंद बंद पारे रे।
तान की तरंग संग मधुर मृदंग धुनि,
　　अंग अंग मदन उमंग वल धारे रे॥
जारे उर कठिन महारे यों प्रहारे हारे,
　　प्यारे अब न्यारे ह्वै कै चित्त सों बिसारे रे।

रातिं वा अटा पै दोऊ कर मैं पटा से पैन,
कौन धौं छटा से हाय कटा करि डारे रे ॥

साँवरे रंग रँगी सबरी कोऊ,
ऊजरे ना ब्रज गाँवरे वारी।
साँवरो रूप बसो दृग मैं,
सब साँवरो दीसत है इक सारी ॥
ऊधव साँवरी रैन चढ़ी,
नटनागर सों कहा ह्वै गई कारी।
साँवरे रंग रिझाय लई हम,
साँवरे रंग की रीझनहारी ॥

ह्वै है महा उपहास हहा,
गुरु लोग सभा विच का विधि जैहैं।
जैहैं नहीं तो वही कुलकानि रु,
बानि परे पर को सिख दैहैं ॥
दैहैं लला नटनागर के सिर,
अंक कलंक को संक न पैहैं।
पैहैं कहा सुनु या ब्रज मैं,
दिन एक या द्वैक मैं जाहिर ह्वैहैं ॥

सुचवात कै ये ब्रजलोग लवार,
हँसे सु हँसे सु हँसेई हँसे।
फिरि बाजे ते बाँसुरी नेह के फंद,
फँसे सु फँसे सु फँसेई फँसे॥
चख ही ते लखे नटनागर ही मैं,
बसे सु बसे सु बसेई बसे।
कुलकानि रु लोक की लाज भटू,
सु नसे सु नसे सु नसेई नसे॥

तुम काहे को भौंर करौ इतनी,
नहिं काज है लाज हिये मढ़िवे की।
यह नीति अनीति न मानति हौं,
दरकार न प्रीति विना पढ़िवे की॥
वदनामी के सिंधु मैं वूड़ि चुकीं,
नटनागर कौन कहै कढ़िवे की।
जव डाकनवारो चढ़्यो सिर पै तव,
लाज कहा खर के चढ़िवे की॥

भोर हि आये हो भाग वड़े,
अद्भूत दसा नटनागर वारी।

कुंकुम छाप लगी उर पै रु,
ललाटहू लागी हैं रेखैं जु कारी ॥
आँखैं हैं लाल रु लागे नखच्छत,
आगे की टूटि गई कसनारी ।
पेंच खुले जमुहात चले,
यहि भाँति कहाँ तुम कुंजबिहारी ॥

प्रात अलसात गात आलस सुनींदे आत,
झूमत झुकात बात पिये मनु हाला के ।
पेंच फहरात सीस जावक लखात भाल,
पीत पट लुटे संग जागे ब्रजबाला के ॥
काहे को छिपावत इतीक हमैं जानी जात,
चिह्न उपटाने उर बिन गुनमाला के ।
नागर जू ठौर ठौर देखिये तनक और,
लली मुख दाग ज्यों हीं दाग मुख लाला के ॥

कान तर्क चूरिन पै चूरिन के फंद रचे,
बनसी अलक नैन मीन गिरधारी के ।
हिरनी मनै के पास बागरि बिथुरि रही,
अंग यारी भरे पै अन्यारी राधा प्यारी के ॥

भौंह धनु चक्र नथ चीता कटि नैन वाज,
नर को इलाज कैसे काज हरै नारी के।
नागर जू कानन अधीर किये बाढ़ि चले,
जोवन के राज साज मदन सिकारी के॥

कीजै सवै नटनागर ऊधम,
तोसे अन्याई को कौन पतीजै।
तीजै सुनी जव धूरवा प्रीति,
कछू विभिचार को मारग लीजै॥
लीजै सवै सुनि नेह की रीति,
सुगोकुल मैं पग फूँकि कै दीजै।
दीजै गवाँय यों हाय वलाय ल्यों,
क्यों असनाय को जाहिर कीजै॥

सुत मातु पिता अपने घर नाहिं,
तौ नेह मैं भूलि गई सो गई।
व्रज मैं यह टेरि कहौ अव तैं,
कुलकानि की सीख दई सो दई॥
नटनागर या अपलोक की गाँठि मैं,
सीस पै तौक लई सो लई।

सब गाँव के बावरे नाम धरौ,
हम स्याम सनेही भई सो भई ॥

नटनागर बाल सखी का कह्यो,
अरी बाँसुरी ल्याव री मैं नहिं लावौं।
आवरी आव का काम है जू,
तुम वाहीं रहो कितौ गारी सुनावौं ॥
नहिं री उतही भल ठाढ़ी रहो,
इत आवो तो तोकह चंद बतावौं।
यों कहिकै हरि हाँथ छुयो,
भजि आहरे ऊहरे मैं नहिं आवौं ॥

नटनागर आये अन्हात थी राधे,
हिये उमड़ी लखि काम-कला।
इत टेरि लिये कहि या विधि सों,
बड़ भाग हमारे सो आये चला ॥
अब हाहा करौं तुव पाँय परौं,
इहै मानिये तौ सब कैहैं भला।
अहा या दह बीच गिरो है छला,
सो निकारि दे तौ नंद जू के लला ॥

हम जाति गवाँइ अजाति भईं,
कुलकानि ते आनि लजै तौ लजै।
हम संक तजी पित मातहू की,
मोहिं नाथ हू त्रास तजै तौ तजै।
नटनागर की न गली तजिहौं,
गुरुलोक के त्राक गजै तौ गजै।
ब्रजमंडल मैं बदनामी के ढोल,
निसंक ह्वै आजु बजै तौ बजै॥

त्रसिवो सदाई नटनागर गुरूजन ते,
कैसेहू बिलोके होत लोकलाज नसिवो।
कसि मन इंद्रिन बिलसिवो न होत कछू,
फैल लखि कान्हर के नेहहू मैं फँसिवो॥
हुलसि बिचारै यामैं होत है चवाव देखौ,
सहिवो परै है या चवाइन को हँसिवो।
काजर के गेह माँझ बसिवो बिकट जैसो,
निपट निठुर तैसो या ब्रज मैं बसिवो॥

दाऊ को बरस गाँठि आजु तौ जसोदा जू नैं,
न्यौंतो वृषभानुलली बैठी पी सँवारे के।

ताहि को जिवाँय कै उठाय समुझाय सखी,
लै गई दुतिय भौंन भीतर पिछारे के॥
नूपुर घमंक कर घूँघुर झमंक नट,
नागर ठुमक पद रमक अखारे के।
कारे नँदवारे को सिधारे जीतिवे के काज,
बाजत नगारे मनौ पंचसर वारे के॥

भनुजा पै नटनागर जू,
वनसीवट पास हमेस रहा करै।
वा मुगधा कुलवान कहा करै,
नैन के सैन के वान वहा करै॥
घालि हिंडोरे महा करै फैल,
तियान झुलावन संग चहा करै।
ज्यों ज्यों गहा करै टेक विहारी त्यों,
नारी अनारी ते हारी हहा करै॥

नटनागर राधिका कुंज में आजु,
लखी वरषा रितु सादर री।
मुरलो अरु झाँझर बाजत है,
पिक चातक बोलत दादुर री॥

जल स्वेद रोमांच पै आय कै योां,
　　　वहकैं सवही भरे खादर री।
दुति दामिनी-सी महारानी दुरैं,
　　　तन साँवरो साँवरो वादर री॥

जमुना के संगन मैं कुंज के विहंगन मैं,
　　　बृंदावन बृंदन मैं अंग एक ह्वै रह्यो।
मधुवन पुंजन मैं मधुकर गुंजन मैं,
　　　मुगधन मन मैं अनूप ओप दै रह्यो॥
नागर जू अंगन मैं भवन उतंगन मैं,
　　　रंग सव रंगन मैं रंग रूप लै रह्यो।
तोज की तरंगन मैं नवला के अंगन मैं,
　　　सैासनी सु रंगन मैं स्याम रंग छ्वै रह्यो॥

हार उर डारि वार सुंदर सँवारि कर,
　　　मार चक्र जैसी नथ थार मैं परी रही।
लकुटी मुकुट पट पाट को झटकि परो,
　　　कुंडल कटक आँखि आँखि तैं अरी रही॥
सुघर सँवारी सारी डार दी बिहारी देखि,
　　　डरी ना परी ना चौंकि चकित खरी रही।

नागर घरनि देखि घरनि बिसरि गये,
अधर धरनि तेऊ धरनि धरी रही ॥

हा अब कैसी करूँ सुनु बीर री,
बा मृदुहाँसी हिये धँसिगी ।
या ब्रज मैं कुलवान कहावतीं,
ते सबरी लखिकै हँसिगी ॥
नँनदी ढिग आय नचाय कै नैन,
कछू कहि बैन भ्रुवैं कसिगी ।
बँचिगी सब मैं बिपरीत कथा,
नटनागर-फंदन मैं फँसिगी ॥

महा सूछम प्रीति को मारग है,
कोऊ जानै कहा अनुरागे नहीं ।
उन हीं को बिचारिये या बिधि सों,
मनो सोवत नींद सों जागे नहीं ॥
नटनागर रीति न जानत हौ,
बिरहानल दाग सों दागे नहीं ।
तिनको जगजीवन जानों वृथा,
पर प्रेम-पयोधि मैं पागे नहीं ॥

चख ये चहत चाहि मित्र को विचित्र चित्र,
पूरन न होत स्रौन वाकी सुनि वात ते।
घ्रान चहै नासिका सुवाके अंगरागहू को,
त्यों ही चहै रसना उचार गुन-गाथ ते॥
चाहत हैं पाँवहू अटन उत आठौ जाम,
त्यों ही त्वचा चाहति परस प्यारे गात ते।
नागर दरस कछु परस भयो न हाय,
विवस गयो है मन मेरो मेरे हाँथ ते॥

पूछै नटनागर को देखो मैं चरित्र ऐसो,
मानो गिरि भूपन सौं मेरे उर छ्वै रह्यो।
वेर सँझलौकी वीच नाहिं न पिछानि पर्‍यो,
किधौं मृगराज व्रजराज रूप ह्वै रह्यो॥
पीत घनस्याम जुत सुरँग उठाय कछु,
विद्युत-लता सौं या लता के वीच ख्वै रह्यो॥
केहरि हैं हरि हैं न जानौं कहा री हैं कहा,
मेरी दोऊ आँखिन मैं कारो पीरो ह्वै रह्यो॥

कारे विन अंजन ही खंजन तुरी के गंज,
कंजन कुरंग मीन भंजन सँवारे क्यों।

कच कुच कटि राजै ब्याली चक केहरी सी,
भोरी भली गोरी आजु अंगराग पारे क्यों ॥
सुघराई सागर सुने हैं नटनागर को,
सहज सिंगार रीझैं उद्यम ये धारे क्यों ॥
रूप के बनाइबे को रूप के अभूषन ते,
गोरे गोरे पाँय कारे कारे करि डारे क्यों ।

रहेंदा हैं औरै घात कहेंदा न एकौ बात,
रहेंदा तुसाँदे लाल कछू ना कहेंदा है ॥
ऐंदा है हमेस नित जैंदा है उसी ही गली,
लली वृषभानु दी गुलाम हुवा रैंदा है ॥
उपमा कहैं ना नटनागर वो नंदनदा,
ताते ससि अंक बीच भौंम सरसैंदा है ।
निचला रहेंदा कर हेंदा ससकैंदा वह,
वैंदा लिखि तैंदा सुधि भूलि भूलि जैंदा है ॥

न मानत मेरो हू ऐरी मतो सु,
मनै मन मैं अलि है मतिमन्द ।
सिखावन सासरेहू की सुनी न,
सुनी मुरली ज्यों बजी व्रजचंद ॥

दिना दुइ बीच दिखाइगी सो,
नटनागर के बढ़िहैं छलछंद ।
डरैगी खरे न टरैगी कबौं,
तू परैगी जरूर मुकुंद के फंद ॥

आजु गई नटनागर जू जहाँ,
कीरति रानी रही परवीने ।
देखी तहाँ बृषभान-सुता,
गजगामिनि केहरि-सी कटि छीने ॥
खोजि थकीं सबरे जग मैं,
उपमा दृग आनन की है नवीने ।
द्वै दल को अरविन्द विराजत,
पूरन चन्द को आसन कीने ॥

जा दिन कढ़ो हो मेरी खोरिहू के पौरि आगे,
ता दिन गड़ो हो मेरे मन उर दीठि मैं ।
ताही छिन लोक-लाज ऊपर परी है गाज,
गुरुजन सासन सहौं न सिर ढीठि मैं ॥
नागरता देखि नटनागर भई हैं लटू,
भटू मैं पठाये प्रान पाँचहू बसीठि मैं ।

नोठि नीठि सब ही को पीठि दै निहार्यो करौं,
बोरि गयो ढीठ हाय मठ की मजीठि मैं ॥

जा दिन लखे हैं जमुना के वाँके कूलन मैं,
फूलन के फाग सोभा निपट नवीनी है।
ता दिन ते छबि की तरंग बढ़ी मेरे अंग,
कोटिक अनंग हू ते रूप-गति पीनी है ॥
नागर जू सागर सरूप को उजागर है,
हाय मेरे नैनन की उपमाह छीनी है।
अब लौं हुते वै यहि लोकवारे मानसी पै,
रूप विधि रावरे नै दैवगति दीनी है ॥

गोकुल की गैल मैं गोपाल ग्वाल गोधन मैं,
गोरज लपेटे लेखे ऐसी गति कीनी है ॥
चौंकि चौंकि चतुर चवायन चलावत हैं,
रही चुपचाप चोप चित मति चीनी है ॥
हा हा करि हारी नटनागर विहारी तै हूँ,
उपमा विचारी जे वहुत गति झीनी है।
मेरे नैन मानसी थे मृत्युलोक हो के वीच,
रूप विधि रावरे ने देवगति दीनी है ॥

पंक या कलंक को तो लाग्यो है निसंक अंक,
संक तजि सारी प्यारी हिय ना हहर तू।
सारे ब्रजवासिन बुराई करिवे की वानि,
कान ना करै री अब गति ना गहर तू॥
रूप गुनसागर निहारि नटनागर को,
वैरिन के वोल सुनि नेकु ना लहर तू।
या ब्रज के लोगन अजस तो उढ़ायो सीस,
विहँसि विहारी संग वावरी विहर तू॥

दैहौं सवै गृहकाज पै चित्त रु,
वित्त वटोरन में सुख पैहौं।
पैहौं गुरुजन की सिख साँचो मैं,
गैल मैं कुंज के भूलि न जैहौं॥
जैहौं सदा जमुनाजल कौ, थल कौ
गऊ छाँड़ि भले घर ऐहौं।
ऐहौं नहीं नटनागर भौन ते,
पान ते पान न पानन दैहौं॥

भोर उठि भौन तैं गयो है वृषभानु ओर,
लखे वरजोर चख विलखि विहाल भो।

ता दिन ते खान-पान-गान मुरली को गयो,
हाल सब भूलि मन वाके नेह-जाल भो ॥
गोधन गोपाल बाल गोकुल के गली गैल,
भूलि जमुना के कूल महा मोह ताल भो।
अंजन बिना हू मनरंजन ये नागर जू,
नैन कंज खंजन से निरखि निहाल भो ॥

आजु सुकुमारी मैं निहारी वृषभानु-सुता,
नारी को बिचारि नीकी सोभा के अगार ते।
सुरी अरु किन्नरी परी हू बिलखाय परी,
नगी की भगी है चाह रूप गुन सार ते ॥
नागर जू नैनन उजागर दिखाय दैहौं,
चली हात सातक बलाय यों अगार ते।
बसन बयार ते बिहाल है न जानी गई,
बाजूबंद हार ते या बारन के भार ते ॥

पीतम बिहारी प्यारी पेखे मैं परोछ दोऊ,
प्रीति नाहिं जाहिर उजागर छये छये।
चित्त चिकनात न लखात न बिख्यात नेह,
दोऊ दोऊ वारे फिरैं हित में ठये ठये ॥

नागर जू नागरी की ऐसी रीति आपुस में,
सारे ब्रजवासिन ते रहत नये नये।
दोउन की दोऊ ओर देह पै न देखि परै,
नैनन में देखे नाते नेह के नये नये॥

ए रे नँदवारे कारे निपट निरंकुस हैं,
कुटिल कुरीति ऐसे छंद सीखे कासों रे।
नेह को न नेम नीके जानत अन्याय कहौ,
गोधन गुपाल तथा देवद्विज सों सों रे॥
प्यारे प्रेम पंथ को तैं न्यारे ह्वै निहार्यो नाहिं,
ए रे नटनागर पुकारि कहौं तोसों रे।
नीति जो ढरै तौ वामैं होति है प्रतीति रीति,
प्रीति जो करै तौ वाकी रीति पढ़ु मोसों रे॥

निसि वासर प्रेम को नेम लिये,
जिय राखि रही पिय की बतियाँ ते।
ता छिन सुंदर सो न भये पिय,
आगम जानि लियो पतियाँ ते॥
नागर अंगना अंगना बीच ही,
दौरि मिली बिरहा छतियाँ ते।

कंठ ते और न बात कढ़ी सु,
लगाय रही छतियाँ छतियाँ ते ॥

चंद अरविंद रमा मंद लगै जाके ढिंग,
बानी पछितानी देखि जाकी बुधिवारी पै।
रुद्रानी अरध अंग उपमा बनै न आछी,
त्यों ही सची सोभती न ऐसी सोभा धारी पै॥
नागर जू रति हू की सूरति दिखाति नाहीं,
वह पतिहीन खीन महादुख भारी पै।
नाग सुर नरी नारी लोयन निहारी जेती,
सारी वारि डारी न्यारी कीरति-कुमारी पै॥

मैं तो हितमाती अनुराग सो अथाती रवि,
जानी नाहिं जाती राति साँझ की फजर की।
नीठि पिय पाये दौरि छाती सों लगाय लाय,
चंदमुख प्यारे पै चकोरी ज्यौं नजर की॥
नागर जू मेरे भौन छाये हैं उछाह-युत,
और सोभा ह्वै गई है कालिह ते अजर की।
ए रे घरियारी तू तौ विना मौत मारी हाय,
वजर-सी लागी मेरे मोंगरी गजर की।

नित जायो करौं जमुनातट को,
  तथा गोधन संग सिधायो करौं ।
बँसुरीबट पास विलास करौं,
  बँसुरी बिच गान सुनायो करौं ॥
नटनागर जा विधि ब्यौंत बनै,
  सुधि नेक गरीब की लायो करौं ।
चित चाह्यो करौं मन भायो करौं,
  छिपि आयो करौं मिलि जायो करौं ॥

इत गोधन संग सखा मिलिकै,
  अपनी यहि खोरि ह्वै जैबो करौ ।
मिलिबो न बनै नटनागर जू ,
  तऊ बाँसुरी में कछु गैबो करौ ॥
ब्रज के बिच मारे लबारन के,
  जो कहैं कछु तौ सुनि लैबो करौ ।
सुख हू दुख हानि रु लाभ हमैं,
  अपने तो जरा लिखि दैबो करौ ॥

सोंचति हौं मैं खरी कब की,
  अब हाय मैं जाय कहा कहिहौं घर ।

या दुख देह दसा बिसरी अरु,
  आवत वारहि वार हियो भर ॥
लाज जहाज डुबोइ दई। नट-
  नागर नेकु निहारत ही पर।
मंद हँसी विच फंद-सी पारि कै,
  इंदु सो मोहिं गोविंद गयो कर ॥

आजु सखी मैं लखी निज नैननि,
  ज्यौं न लखी रु सुनी जग रीती।
नेकु उछाह सुने नटनागर,
  होत सँकोच गुनै गुन भीती ॥
नीठि उमंग उठै उर अंतर,
  होत महा मिलिबो दुख जीती।
जोबन औ सिसुता विच वाल के,
  प्रीति मों वैर रु वैर मों प्रीती ॥

आई दौरि दूरि तैं तिहारे दिखरावै काज,
  देखत बनैगी नाहिं ऐसी छवि वारी ते।
कारे कारे वादर कढ़े हैं त्रिकुटाचल ते,
  विद्युतलता के हैं पताके धार भारी ते ॥

देखु नटनागर की सौंह जो करु हूँ तोसौं,
पिक रव मोर सोर घोर घटा कारी ते ।
जमुना है न्यारी जाके देखि तट भारी आली,
आजु की छटा री चढ़ि निरखु अटारी ते ॥

स्याम स्याम वादर ये आवत इतै को अव,
धूरि रही पूरि सोई नेकु ना निहारी तैं ।
विद्युत को जोर जाके संग सोर मोरन को,
चातकी रु कोकिला पुकारि रही धारी तैं ॥
सौंह नटनागर की और ही छवी है आजु,
गरजि परत बूँद उठि दौरि आरी तैं ।
मैं तो गई वारी ऐसी नाहिंन निहारी वीर,
आजु की छटा री लखु चढ़िकै अटारी तैं ॥

वयसंधि को जोर भयो तन मैं,
सव सोतिन के उर साल ठयो ।
नटनागर लाल निहाल भयो,
सुर नागरि को अभिमान गयो ॥
मुखचंद को पेखि अनंद गवाँय कै,
इंदु प्रकास तैं मंद भयो ।

ब्रजराज के जीतिबे काज मनो,
रतिराज नयो इक सस्त्र लयो ॥

छल सो छबीली आजु छैल अवलोकन को,
छरा हू उतारि धरे पायर घसन ते।
सखिन के संग में कुरंगनैनी पैनी मति,
दूरि रही ठाढ़ी चाह चातुर फँसन ते॥
नैन नटनागर के औचक परे हैं आय,
हाय कहि बैठी गुरुजन के त्रसन ते।
बत्तीसों दसन ते यों रसना को दावि रही,
रसना को दावि रही पल्लव दसन ते॥

साँकरी गली मैं आजु लखी वृषभानु जी की,
जात जमुनाजल कों सोभा के लसन ते।
ताही गैल छैल नटनागर जू आइ गये,
हँसन दुहूँ को भयो भृकुटी कसन ते॥
नंद निज गोधन मैं ताही छिन देखि परे,
लुके निज बास दोऊ मानों भै असन ते।
बत्तीसों दसन ते यों रसना को दावि रही,
रसना को दावि रही पल्लव दसन ते॥

नायन न्हवाय कै गुसायनि के पाँय भावैं,
उझकि उझकि उठै वा कर लसन ते।
ताही छिन सखी लाय ताकर पोसाक धरी,
ठाढ़ी ह्वै सिंगार साजे सहजै हँसन ते॥
नेही नटनागर अटारी पै चढ्यो छिपाय,
छाँह लखि नाँह की लुकानी त्यों वसन ते।
बत्तीसो दसन ते यों रसना को दावि रही,
रसना को दावि रही पल्लव दसन ते॥

आलम सेख सुजान घनानँद,
जो जग बीच या जाल अरूझो।
रंक रु राव को भाव नहीं यह,
रंग रँगो जिन्हैं और न सूझो॥
वा अलबेली-सी लैली निहारि के,
पूत पठान को जाहिर जूझो।
जान अजान भये नटनागर,
प्रेम को नेम प्रवीन सों बूझो॥

गुन-हीन हो हार हिये उघरे,
दृग लालन लालो वह्यो करिये।

अधरान पै अंजन भाल महावर,
भूषन अंग हयो करिये ॥
पलपीक लगी नटनागर जू,
अलकैं बिथुरी उमह्यो करिये।
अहो माखनचोर ! यही विधि सों,
मम आँखिन वीच रह्यो करिये ॥

यह वेनी गुही गहिकै ललिता,
सिर चूनरि चारु सह्यो करिये।
किन चोली रची अति चातुरी सों,
नथ वेंदी विसाखा वह्यो करिये ॥
नटनागर पायर पायन मैं,
भृषभानु-सुता यों चह्यो करिये।
अहो माखनचोर ! यही विधि सों,
मम आँखिन वीच रह्यो करिये ॥

२—वियोग

विनती इतीक या गरीविनि की हाय हाय,
प्रीति की प्रतीति वातैं सुनिकै सुनाय जा।
नागर जू सागर सनेह को न पागो नेरे,
प्रेम के पयोधि वीच न्हाय जा न्हवाय जा ॥

मेरी ओर याही खोरि ना तो या महल्ला बीच,
तेरी मोहनी में बाँके टेढ़े बोल गाय जा।
नेक इत आय जा छिनेक इत छाय जा रे,
दरस दिखाय हाय मरत जियाय जा॥

सर में तरवाय कै बोरियै कै,
गिरि पै चढ़वाय कै डारिये जू।
कछु जान के लेन के और उपाय,
तौ सिंघ गयंद बकारिये जू॥
अब मान तौ कान्ह मैं आनि रह्यो,
जो उबारिबो है तो उबारिये जू।
नटनागर ऐंचि कै ढोठ महा,
हहा बंसी की तान न मारिये जू॥

चहुँ ओर ते चित्र विचित्र चमू,
बदरा निज रूप दिखावहिंगे।
पिक चातक भींगुर दादुर मोर,
महा उनमाद बतावहिंगे॥
नटनागर वृच्छलता लिपटी,
लखि कै सुधि का नहि लावहिंगे ?

सखि चातुर मास मैं आतुर ह्वै करि,
चातुर का नहिं आवहिंगे ?

बाँसुरी समान मेरी पाँसुरी हरेक बोलै,
उठत असाध पीर मनो घाव नेजा ज्यों।
हाय नटनागर जू आह तौ कढ़ै है नीठि,
लोयन वहै हैं दोऊ भरे जल सेजा ज्यों॥
मारे नैन बान ऐंचि ऐंचि स्रवनांत जबै,
ताते हते छिद्र से निकट थिर वेझा ज्यों।
रावरो वियोग आगि जाके खाय खाय दाग,
ह्वै गयो करेजा मेरो चूनरी को रेजा ज्यों॥

जग की न जाहर की जस की न जी की जान,
जन की न नागर जू जीह ज्वाब जाके हैं।
पीर को न पीर परपीर की न गनै पीर,
परत न धीर प्रेम-पुंज पास पाके हैं॥
छीन तन छाती छेद छिछके रहैं न छानी,
छिपत न छाँह अति छाक छवि छाके हैं।
मन के न मार के न मौत के न मारे हारे,
हारे हिय मारे हाय मानसी विथा के हैं॥

कठिन महान खान वरछी वंदूक वान,
प्रान हू की हानी सिंघ वारन वकारिवो।
जहर हलाहल को पान हू कठिन नाहिं,
त्यों ही नटनागर न आगि तन जारिवो॥
त्यों हो जप जोग व्रत तीरथ अहार विन,
करिकै अनेक कष्ट देह हू को गारिवो।
एते सव मेरे जान सुलभ लखात सारे,
कठिन महा है प्रीति-रीति प्रतिपारिवो॥

अली मृग मीन मोर चातकी अही चकोर,
कंज रु कुमोद चक्रवाक आदि मैं गिने।
वद्रे—मुनीर वेनज़ीर सीरी खुसरू में,
सागर प्रवीन जलावूव ना जिते सुने॥
सीरीं फरहाद तथा यूसुफ़ जुलेखा जैसे,
लैले मजनू हूँ ज्यों गुलिसता घने घने।
नागर जू प्रीति को जितावै जिन्हैं लावै जीह,
प्रीति करिवे की रीति जानत इते जने॥

नटनागर नेह लग्यो है नयो,
हम काज उन्हें तरसावनो ना।

फिरि या ब्रज वीच चवाव चलै,
तुछ कारज को तन तावनो ना ॥
तुमको सुख देखि हमैं सुख है,
गुन नूतन नेह के गावनो ना।
इत आवने ते दुख पावने है,
इत आवनो ना दुख पावनो ना ॥

पहिले लगो है लाग आगि सी न जानि परी,
भाग की है बात विन चाहन पगन की।
मैं तो नटनागर उजागर न कीन्हीं ऐसी,
परी सीस आय यहै दागन दगन की ॥
मानो गुरुजन की न छानी ही छिपाय राखी,
हा हा मैं न जानी ऐसी मो सिर खगन की।
मगन भयो है मन ठगन लखी न हाथ,
अगनि अनोखी चोखी चित के लगन की ॥

कैसे कहूँ नटनागर जू अव,
या स्रम हाय जरौं किन जी की।
मो उर वीच दरार दिखात सो,
याको सियै का सुई दरजी की ॥

जानै धनाढ्य कँगालन की गति,
ह्वै गरजी सो लहै गरजी की।
वे मरजी की विथा सिरजी नहिं,
जानत है गरजी गरजी की॥

जितने मुख बैन कहै रस चूवत,
ते सबही चुनिबोई करैं।
धरि ध्यान हिये नटनागर त्यों,
गुन तेरे लला गुनिबोई करैं॥
निसि द्योस जहाँ तहाँ सीस सदा,
धुनकैं धीरज ना धुनिबोई करैं।
फिरि ज्वाब न देवो हमें तो कहा,
कहि हो जो कछू सुनिबोई करैं॥

पहिले मैं कह्यो समुझाय तुम्हैं,
लड़ बावरे ह्वै करि एक न मानी।
ऐसे को देत बजाय कै ढोल,
करै है सबै पर राखत छानी॥
और कहा कहिये नटनागर,
जानती ना टुक लाभ रु हानी।

हाय कहा अब रोवती हौ,
अहो प्रीति करी कछु रीति न जानी ॥

यहै प्रेम की रीति प्रतीति सुनी,
परि पाकत सो फिरि पाकै नहीं ।
कहिये कहाँ जाय पुकार करौं,
गुरु लोग सभा विच आँकै नहीं ॥
मम भाल मैं हाल लिख्यो विधि यों,
कोऊ या ब्रज बोलत साँकै नहीं ।
नटनागर हा अब कैसी करी,
दुसराय कै द्वार पै झाँकै नहीं ॥

मन को मिलिवो जब ही ते भयो,
भयो तीखे कटाछन को घलिवो ।
सुखसागर जानि सनेह कियो,
नटनागर आगि विना जलिवो ॥
तन को मिलिवो तो रह्यो अति दूरि,
रह्यो कुल मारग को चलिवो ।
रह्यो बैनन को मिलिवो न बनै,
न बनै अब नैनन को मिलिवो ॥

नैनन सैन चली न मिली तो,
उजाहर देखि परी जब जागी ।
गोकुल वेद गुरूजन की कुल,
रीति प्रतीति भई सब दागी ॥
वा नटनागर के छवि तोय सों,
ज्यौं छिरकौ तौ रहै कहुँ पागी ।
हाय न और उपाय कहूँ अब,
मों उर लाय वियोग की लागी ॥

जित हीं तितते जब हीं तब हीं,
इत आय छिनेक तौ छायो करो ।
नटनागर कागद कैसे लिखूँ,
वह नागरी के मन भायो करो ॥
कुलकानि रु लोक की लाज नसाय कै,
प्रेम की वेलि बढ़ायो करो ।
बिरहागति याकी कथा हमरे ढिंग,
आय लला सुनि जायो करो ॥

निज प्रान की घात को पाप विचारिकै,
नेकहु ना विष खाये बनै ।

कुल लोक की वेद की त्यों मरजाद की,
कैद के बीच रहाये बनै ॥
नटनागर लोग चवायन सौं,
धरि फूँकि कै पाँय धराये बनै।
दृग बान अनी को सुजान हिये,
जिनके लगी जासों कहाये बनै ॥

पहले तौ प्रीति के पयोधि मैं पगाय दीन्हीं,
अब तो चुराये नैन हाय यों दहा करौ।
ता पै जो सुनावत हौ रूखे मुख ऐसी बात,
सुख जो चहौ तौ नेक दुखहू सहा करौ ॥
या ब्रज बुराई देत देर न लगैगी देखौ,
नीति यौं सुनाओ नेह गैल की गहा करौ।
हमको न भाई नटनागर जगाई आप,
प्यारे जो कहाये ततौ न्यारे न रहा करौ ॥

छैल मैं तिहारे छवि-छाक सौं छकी हूँ हाय,
छल सों न जान्यो जू छली सी रहै छानी मैं।
पेखे हू प्रतीति करि प्रानन कौं कीन्हे पेस,
पूरे ना मनोरथ परे हैं जाय पानी मैं ॥

दूवरी भई है देह रावरो दियो वियोग,
नागर जू नागर निहारि कै विकानी मैं।
सवकी कहानी जी को नेकहू न मानी मिंत,
मिलिवो वनैंगो नाहिं जानी या न जानी मैं॥

कुल तैं कुटुंव तैं कदंव तैं रु कुंजन तैं,
कूल जमुना तैं हा निहारि वैर कीनों तैं।
जग तैं रु जस तैं जगा तैं जात पाँत हू तैं,
जुलमी तैं जाहिर ही मन छीनि लीनों तैं॥
भाल मैं लिखी ही नटनागर भली या वुरी,
हाय दुख एक जो पै नेक हू न भीनों तैं।
वालरूपी ताल तैं निकारि मोहिं जाल डारि,
सुख तो है काल लाल हाल दुख दीनों तैं॥

ए रे दिलदार तो सौं कहत पुकारि हरि,
कछु ना विचारु धुनि कानन मैं नाय दे।
जारि दे रे विरह के वंधन विकट फंद,
वृच्छ जो वियोग ताको जर ते मिटाय दे॥
मिलु नटनागर तू अव तो उजागर ह्वै,
जैसो उर वीच ध्यान तैसो राग गाय दे।

कानन हमारे मैं कृसानु सी चढ़ी है चाह,
ए रे चंद आनन ते तानन सुनाय दे ॥

नागर जू बाँचियो उजागर लिख्यो है पत्र,
आज हू ते नेह जानि छेह न छियो करो।
या ब्रज के बावरे बुरे हैं बजमारे लोग,
तिनते छिपाय जरा खबरि लियो करो॥
प्रीति रही छानी जाको अब लौं न जानी काहू,
कानन चवायन के वाच क्यों पियो करो।
परस भये को प्यारे बरस गये हैं बीति,
तरस विचारि जरा दरस दियो करो॥

हम तौ बहाई जाति पाँति या विख्यात बात,
बोलत प्रभात रात नाहीं कछु छाने मैं।
आवन हमारो मनभावन न होत उतै,
महा परमारथ है छवि सों छकाने मैं॥
नागर जू मान उपकार अति जानि जिय,
नेकु डर उरु है हमारे आने जाने में।
बानि गही नैननि नै हाय न विचारो कछू,
प्यारे कहा हानि तेरे सूरति दिखाने में॥

नागर जू पूछि कै सुन्यो है बुद्धि सागर ते,
कागद लिखे को बाँचि कह्यो जिन सोध ते।
आजु लौं न सुन्यो देख्यो पोथी के प्रबंधन में,
नाहिंन परैगो पार पर लिखि औध ते॥
नीके कै निहारि कै उचारत हौ ऐसी बात,
हँसिकै सुनावत कहूँ न कछु क्रोध ते।
बोध ते अबोध ते या मोद ते बिरोध हू ते,
परिकै कढ़्यो न कोऊ प्रेम के पयोध ते॥

कुल औ कुटुंब के दरारे भारे भानुकर,
बेद गुरु भार खोद डारे सो न पाइयतु।
सुघर सुधार जामें लग्न बिच नाय दिये,
जैसे रस ग्रंथन मैं आगे आगे गाइयतु॥
रावरे अनुग्रह को मेह बरसायो आय,
एकौ बीज ऊग्यो नाहिं भाग यों दिखायतु।
हाहा नटनागर उमेद फल फूल की थी,
प्यारे प्रीति खेत में तो रेत न लखायतु॥

ए री मेरो बीर धरि धीर सुनु मेरी पीर,
तीर जैसो लागत सरीर नीर कारे सों।

कारे कारे बादर ये न्यारे दुख देन लागे,
कटत करेजा कारी कोकिल पुकारे सों ॥
कारे नटनागर ते न्यारे ह्वै निहारे दुख,
प्यारे प्यारे प्रान कैसे रहत बिसारे सों ।
नेकु सुख लायबो कहूँ न कित जायबो री,
हाय मन सौंपि दियो हाँथन हमारे सों ॥

भूख प्यास हास रु विलास जे अवासन के,
मिंत बिन चित्त महँ कैसे मन भात हैं ।
रूरे जग बीच कोऊ मानस बिरंचि रचे,
मेरे कोऊ आँखिन में नाहिंन समात हैं ॥
नागर जू आगि-सी जरै है उर आठौ जाम,
घाम लागै चाँदनी रु चंद विषदात हैं ।
करत परेखे हाय प्रान अवसेष रहे,
देखे बिन प्यारे के अलेखे दिन जात हैं ॥

और तौ तोहि को निंदत हैं सखि,
क्रोधित बाम न मानै मनाई ।
मैं नटनागर वंदत हूँ धनि,
री धनि तू वृषभानु की जाई ॥

तेरे मनाइवे वीच उनिंदित,
सोंच मैं क्यों पलकैं तू मिलाई।
काल के लालन भूखे हुते,
सुभली करी तैंने हहा तौ खवाई॥

पहिले तौ लालन के उर लपटाइवे को,
फिरी छवि छाकी तैं न राखी सुधि देह की।
सारे ब्रजवारे जे विचारे समुझाय हारे,
गुरु न सिखाई तू न सीखी कछु गेह की॥
नागर जू उमगि उछाह सौं वुलाई आजु,
हाय नटि वैठी वात कीनी तैं अछेह की।
वीति गई रैनि रसरीति गई मोहन की,
प्रेम की प्रतीति गई नीति निज नेह की॥

जाके काज मैंने लोकलाज को अकाज कीनी,
सखी के समाज कुल कारन वचो नहीं।
फेरि गुरु वृद्ध पुनि सासरे रु पीहर मैं,
सारे व्रज मांहिं ऐसो को है सो खिंचो नहीं॥
हाहा नटनागर मैं सागर सनेह जाने,
आगरनिकारे गुन हिय को पचो नहीं।

कोटिक प्रपंच कीन्हें काहू को न दीजै दोष,
रंच सुख भाल मैं विरंचि ही रचो नहीं ॥

सागर सनेह गुनखान नटनागर हैं,
नागरी तैं ताते चित्त चोर्‌यो क्यों हुलास को।
भोर ही ते भामिनी भुलाऊँ तू न भूलै नेकु,
भाँवरी भरै है वा विहारी रसरास को ॥
मन तजि मान मेरी बारी मैं निहारी नेकु,
प्रीतम बुलावै मग लीजिये अवास को।
लजनी बनी है अजैां रजनी रही न आधी,
सजनी प्रकास गयो रजनी प्रकास को ॥

गौवन गुविंद ग्वाल गोकुल गली के गैल,
गावत हैं गोरी होरी छैल गैल हास को।
गोप हू अथायनि ते गये निज गेह काज,
तिया सुख साज के सँवारे निज वास को ॥
कोकनद कोक सोक गोपनि गये विलोकि,
हर्ष नटनागर है निहचै विलास को।
वौरो दुख तजि निज सजनी सिंगार साजु,
सजनी प्रकास भयो रजनी प्रकास को ॥

गोकुल की कुल की गोपाल गोपी गोधन की,
　　गारी की न गारी यों गँवाई गैल गेह की।
दारुन दुसह दुख दीनता उठाइ देखो,
　　दिल में बढ़ी है दाह दाधी छबि देह की॥
मारुत मयंक मृगमद हू महान नंद,
　　लागति है आगि नैनहू ते रितु मेह की।
नागर जू निरखी न लिखी सदग्रंथन मैं,
　　नाजुक निपट है निहारौ रीति नेह की॥

वेद पुरान कुरान किताबन,
　　　　और हू ग्रंथ अनेक न सूझो।
जे जग में सदवैद्य कहावत,
　　　　जो नटनागर ताहि ते बूझो॥
चातुर और गुनी जितने किय,
　　　　प्रस्न सोई हिय माँझ अरूझो।
या को उपाय न पावत है जग,
　　　　मिंत वियोग सौं रोग न दूजो॥

काठ के बीच रहै घुन कीट ज्यों,
　　　　है मन रोग कहाँ तक राखैं।

प्रान सथान रहे नहिं राखेहु,
दारुन सोक कहाँ तक राखैं ॥
या विषया सुखदा दुखदा भई,
हाय कुभोग कहाँ तक राखैं ।
नेम लख्यो नटनागर नेक,
वियोग को जोग कहाँ तक राखैं ॥

ये अँखियाँ दुखियाँ हैं सदा,
कब ह्वै सुखियाँ छवि मित्र की ज्वैहैं ।
जानती हौं मैं असाढ़ के अंबुद,
ज्यों उमड़े हैं अघाय कै च्वैहैं ॥
मो उर भो है अगार यों आग को,
देखे बिना नटनागर ख्वैहैं ।
प्यारे परी है वियोग की राति,
सु याको प्रभात कहौ कब ह्वै हैं ॥

मोहन मिलायवे को उद्यम उठायो वीर,
मंद भाग मेरे ते फुर्यो न स्रम जान दे ।
स्रवन सुने ते अनुराग उठै मेरे उर,
सोऊ दुख धार्यो मैं कहूँ सों नेक कान दे ॥

प्यारे नटनागर को ध्यान तू वताय मोको,
विनय विचारि मेरी सीघ्र प्रान दान दे।
मिलिवो रु वोलिवो निहारिवो रह्यो है दूरि,
हा हा उन पायन की धूरि नेकु आन दे॥

वालम विदेस जानि वागन के वृच्छन पै,
वैर ही वढ़ावत हैं चातक वहू वहू।
रैनि को करै है रारि नींद निरवारि एते,
राकापति राग रंग सुरभी रहू रहू॥
प्यारे नटनागर के अंतर समै को पाय,
मोहिं को सतावत है विरहा महू महू।
लाज की नसायनि वसायनि कछू न ताते,
कोकिला कसायनि पुकारति कुहू कुहू॥

तकत तवीव जित तितही कितावन को,
नागर जू तर्क ताके एक हू लखात ना।
नस्तर उपाय नाहिं निहचै इलाज कोऊ,
याको जिय जीवन तो जाहिर जनात ना॥
अस्वनीकुमार आदि धनंतरि वैद जैसे,
कहाँ लुकमान तुच्छ कोऊ जस पात ना।

सरद भयो है दिल जरद भयो है रंग,
गरद भयो है अंग दरद दिखात ना ॥

विरह दवारि जाके और न अधार कछु,
तीनो पुरधार नटनागर न धाम है।
जरत जनात नाहिं जन को लखात नाहिं,
विपति अमोघ ओघ सोक आठौ जाम है ॥
रहति समाधि जाकी अधिकै विषाद हू तें,
विरह-विथा के थाके जाके नहिं काम है।
आह नहिं होती तौ कराहि मरि जाते केते,
दुःखिन के उरमाँझ आह विसराम है ॥

ए रे हौ चितेरे तो सौं चित्र न वनैगो भाई,
नाहिंन समच्छ प्यारो वात है दिगंत की।
नागर जू चित्र की न तेरे पास साहित है,
सोई सुन नीके मैं सुनाऊँ वात तंत की ॥
विरह चितेरा विस्वकर्मा को स्वरूप होय,
न वह अवस्था रंगभीति मेरे चित्त की।
ऐसो जोग साधि कै समाधि वीच होवै थिर,
तापै लिखि जैहै छवि प्यारे मेरे मिंत की ॥

कोकिल कलापी कीर चातक कपोत आदि,
कूकैं सुनि हूकैं जाकी काहे को सह्यो करूँ।
सीतल सुगंध मंद मंद गति मारुत-सी,
चंद अरु चंदन सौं चित्त क्यौं दह्यो करूँ॥
सिच्छा जो सुनावै जाकी सुनै अरु गुनै कौन,
गुन नटनागर के गिनिकै गह्यो करूँ।
सुख दुख दोऊ मोमैं होय कै विलोम वसे,
मिंत जो मिलै तो मैं निचिंत ह्वै रह्यो करूँ॥

स्वस्ति श्री सज्जनपुर महाशुभ श्रेष्ठ थान,
उपमा अनेक जेती प्यारे को लिखँ मैं धाय।
यहाँ कछु कुसल तिहारे तीनि दरस ते,
चाहति तिहारी मित्र अहो निसि जपौं जाप॥
नागर जू पूरन प्रसन्न ह्वै मिलौगे जब,
महादुख एक जाको मो उर बढ्यो है ताप।
हाय दिन राती मेरी छाती यौं जरी ही जाती,
काती विरहा की नेक पाती न पठाई आप॥

राकापति राग रंग रहस अलीन संग,
मो मन उमंग तजि विवस परत जात।

बोल न विहार वन बागन तड़ागन के,
  बारन के भार धर पाँय न धरत जात ॥
बिरह पयोधि जाको बोध न कहाँ लौं बारि,
  मो दिल थको है जामे बूड़त तरत जात।
प्यारे नटनागर पयान परदेस कीनो,
  ता दिन ते नैन भरि भरिकै ढरत जात ॥

हाय मन मेरो मेरे बस को रह्यो न आली,
  करन सिखाऊँ तौहू अकर करत जात।
चंद अरु चंदन को सीतल बतावत पै,
  परस दरस हू ते मो उर जरत जात ॥
सीतल सुगंध मंद मंद गति मारुत यौं,
  मीच को सिखायो पंच प्रान को हरत जात।
प्यारे नटनागर पयान परदेस कीनौं,
  ता दिन ते नैन भरि भरि कै ढरत जात ॥

नेह के सुनीर मैं सरीर मेरो आदि अंत,
  धीर न धरत हाय देखत गरत जात।
बिरह दवारि पै पतंग मेरे पाँचौं प्रान,
  अनुक्रम ही ते एक एक ही परत जात ॥

लोयन को मृगमीन कंज खंज दाखत हैं,
झूँट सब भाख्यो एतो भरना झरत जात।
प्यारे नटनागर पयान परदेस कीनो,
ता दिन ते नैन भरि भरि कै ढरत जात॥

वानि तजि वावरी वयान सुनि वैठी ढिंग,
हानि है न यामैं नेक क्यों है तू गुमान में।
यह हैं महान ठान तुम ना गिनी है हानि,
मान भय पंचवान जानि हैं निदान में॥
नागर जू मान अपमान की न हानि है जू,
मैं हूँ हयरान हौं गिलान तेरी आन में।
गन्यो है अयान जे वो नाहिंन सयान हेरे,
प्रानन पयान कीनो प्यारे के पयान में॥

वाम चख आजु मेरे कान सौं कहै है वात,
त्यों ही भौंह वंक भृकुटीन सुखदैनी सौं।
वाम कुच वाँह त्यौं हीं करत उछाह आजु,
होत है रोमांच मेरी देखो कटि पैनी सौं॥
प्यारे नटनागर पधारैं परदेस हू तैं,
जौहर करैंगे जुद्ध पायर वजैनी सों।

सगुन सुहावने से होत हैं सहेली देखो,
पीठि पै हिया को हार विहरत वेनी सों ॥

श्रद्धा इन नैनन में नाहिंन निहारिवे की,
त्यों ही श्रोत्र बीच आय महा सून्य लायो है ।
नासिका रु रसना में भ्रम सो पर्‌यो है भारी,
हाँथ पाँय डोलन में नाहीं वल पायो है ॥
नागर जू दूरि वसिवे ते वसे एते दूरि,
खान पान न्हान नींद आदि लै गिनायो है ।
काहू ने न गायो है वतायो है न वेद काहू,
रावरे वियोग को महान रोग छायो है ॥

आलय में अपने लखे हैं लाल सपने में,
वाल है विहाल अति चित्त मैं सकानी-सी ।
त्यों ही सुनि सुजस सराहना सहेलिन सों,
सासैं भरि सीस के कढ़े हैं प्रीति सानी-सी ॥
नागर जू धारे पति मन क्रम वाच हू ते,
जाहिर जनाय जु पै वाहर विकानी-सी ।
सोक रस सानी विलपानी सी वधी-सी वोलै,
छीनी-सी छकी-सी हँसै डोलति दिवानी-सी ॥

भारे दुख सारे ये विलावैंगे पलेक माँझ,
प्यारी कहि मोको प्यार करिकैं पुकारैंगे।
न्यारे ह्वै रहैंगे न, निहारैंगे हमारे नैन,
विपता वियोग सारी हँसी हँसि जारैंगे॥
सगुन हमारे मन देत नटनागर के,
आवन की धावन सुनाय हाँक पारैंगे।
प्रीतम पियारे वे हमारे प्रान पाहरू हैं,
प्रीति रीति जानि परदेस ते पधारैंगे॥

बुद्धि ते उठावत हैं उद्यम अनेक भाँति,
ग्रीषम के ओर ज्यों निहारो नास पाय जात।
जाहि पै न मानत हैं करत उपाय केहू,
सीत के तुषार में ज्यों अंबुज समाय जात॥
नागर जू कहाँ जाय हाय मैं सुनाऊँ दुख,
लाग्यो आधि रोग यौं करेजो मेरो खाय जात।
मन के मनोरथ सों मन ही में वृद्धि पाय,
मन हीं मैं फूलैं फलैं, मन मैं विलाय जात॥

वार वार हार हार कहत पुकार तोसौं,
वृथा मत मार नेक धार धीर हारे तू।

सौंह नटनागर की बोलत उजागर मैं,
नागर कहावै नाहिं ऐसी चित धारे तू॥
मैं तौ दुखिया हौं आठौं जाम बीते ध्यावत ही,
ताहि के अराधे साधे नेकु दया ला रे तू।
भई मम भाग की सहाई तेरी सही हाय,
गई करि जारे देखि दसा दई मारे तू॥

गुन गरुवाई मंद हास सुघराई लिये,
चोप चतुराई नटनागर चुन्यों करैं।
कछु लरिकाई जामैं झूँठी कुटिलाई संग,
मृदुल महान बातैं सुनि धू धुन्यौं करैं॥
भौंह की बँकाई त्यों झुँकाई तीछे नैनन की,
प्रीति के पयोधि बीच चित को सन्यौं करैं।
देस परदेस वेस नगर उजार वीच,
तेरे गुन आठौं जाम मो मन गुन्यौं करैं॥

जावै डूबि जहाज, जा विच को पैर्यो चहै।
पहुँचै का विधि पार, विरह पवन अतिसय प्रवल॥

बुधि सौं नेकु विचारु, रे तबीब क्यों तपत तू।
विरहा दरद दरार, पूरन ह्वै न विरंचि सौं॥

उनके जतन अनेक, घाय लगत केउ सस्त्र के।
टाँका पटी न सेंक, विरह कटारी सों विंधे॥

पुनि किन साँझ प्रभात, छिन छित वीतत वरष सम।
दरदी के दिन रात, कटन महा अतिसय कठिन॥

जरे हरे होइ जाँय, आगि परै आरन्य मैं।
फेरि नहीं हरियाय, बिरहा अगिनी सौं दहे॥

नर तन पुर सों पाय, वरषाकाल विचारि कै।
विरहा आतिथि आय, उर विच न्याय निवास किय॥

ते नहिं जायैं फेरि, विरह कुल्हारे सौं कटे।
वरषै सुधा घनेर, सिच्छा अंवुद छाय कै॥

अजव अनोखो घाय, विरह सस्त्र अतिसय वुरो।
नटसालहि रहि जाय, नाहिं साल दरसाल ना॥

विरहा उदधि अथाह, मिंत रूप जामे रतन।
मरन ठानि परमाह, मरजी वाकी धारि मत॥

हा कैसो दुख दीन, नहिं मार्यो पार्यो नहीं।
पच्छी मन परहीन, कीन्हों विरहा वधिक नै॥

नाहिंन लुकन समाज, दिल दुज बुधि पर विरथ भे।
विरह अचानक वाज, आनि पर्यो आकास ते॥

होत छुये मति हीन, आय धनंतर हू थको।
विरह हलाहल पीन, बंचै नाहिं विरंचि सौं॥

तिनको अति अनुराग, चारु बुद्धि चतुरान की।
राग अलौकिक आग, जारन विरही जन हृदय॥

विरही मारन धार, प्रेरत है लू लपट को।
ग्रीषम अजब गँवार, कहे जार को जार ही॥

लिये सकल सुख छीन, विरहा आमिल आय कै।
आह लकुटिया दीन, दिल दी कम्मर तोरि कै॥

जालिम विरह जवान, कांत समृति मादक पिये।
ऐचो कानि कमान, मान बचैं तउ खटकि हैं॥

जो जाही को खाय, कहो ताहि को डर कहा।
ता रख हू जरि जाय, विरह भुजंग फुँकार ते॥

सुरस प्रीति अन्हवाय, मो दिल पीतर रूप को।
विरहा तपत तपाय, कीन्हों सोनों सोरमों॥

सो सँजोग सुखदान, वारौं मिंत वियोग पै।
जे वियोग सँग प्रान, वह सँजोग सुख थिर नहीं॥

दिन वीते दुख छीन, होत जगत साँची कहत।
नित प्रति होत नवीन, विरह-व्याधि विपरीति-गत॥

पूँछे किये उपाय, जिते सयाने जगत के।
दिन दिन दूने घाय, मों उर ते नाहीं मिटैं॥

बचै न यों बीमार, कोटि जतन याके करौ।
मिलै मिंत दीदार, जीवो याको सोइ दिन॥

गई करैं जो खाय, विरह आगि अतिसय विकट।
एकहु नाहिं उपाय, कियो न है न करैन को॥

यों दमकत इक दाग, मो उर ऊसर बीच को।
मानहु जरत चिराग, सूने सहर अटान ज्यों॥

सुनहु पथिक मम सीख, निकसो जो वा पुर निकट।
दरस भिखारी भीख, माँगत यों कहि दीजियो॥

भई अचानक भेंट, पावसु बुधि टूटत तसै।
चीता विरह चपेट, मो मन मृग की कौन गति॥

बैठे मिंत विसारि, गति इत की कितियक लिखूँ।
बिरहा मरुत तुषार, जारत मो मन कमल को॥

विरहा विषम दवारि, मन वन के दाहत विटप।
यह अचरज है हाय, डहडहात नित प्रेम तरु॥

होहि विजय नहिं हार, मिंत सहायक है निकट।
विरहा वाघ वकार, मो मन जुध जूटत भयो॥

रे मन मृग निरधार, मिंत सहायक हेरि मग।
कोनो कहा विचार, वैर विरह मृगराज सों॥

विरह अमोघ बँदूक, अभिप्राय है अस्त्र सम।
करत करेजा टूक, त्वचा माहिं दीसै नहीं॥

विरह बड़ी वजराग, जाके उर ऊपर परे।
कढ़ै सुधा सौं पाग, आतस ना बूझै अवस॥

बीती ऊमिरि मोर, बीती निसि न वियोग की।
हा कब ह्वैहै भोर, या रहि है यौं घोर तम॥

कूकनि लगी कुयलिया, मधुर महान।
हा! हा!! मिंत!!! विरह ते, निकसत प्रान॥

मो उर लाए मितवा, विरह दवारि।
कियो धूरि निज करते, अपन अगार॥

चहकन लगे चतकवा, बरसन लाग।
बूँद परस मों अंग पै, मानहु आग॥

उमड़े स्याम बदरवा, केकी कूक।
कीनहु मोर करेजवा, सब मिलि टूक॥

लागेहु मास असाढ़हु, भू हरियानि।
मीत विरह-जल वह में, पकरहु पान॥

मूरत मेरे मित की, चख उर माहिं।
सोवत जागत चख ते, निकसत नाहिं॥

ए रे मीत जाय उत, का दुख दीन।
सब सुख मेरे अँग ते, लीन्हेउ छीन॥

छेके मोर करेजवा, विरह बंदूक।
तब ते चलत रहे नहिं, हा उर हूक॥

देखहु यह विपरीती, बरसत मेह।
तऊ झार ना मिटती, प्रजरत देह॥

देखहु यह कस लायो, नैनन नेह।
बूड़े जलहि रहत हैं, सूखत देह॥

मैन विरह दुख जानत, नैनन दीन्ह।
कानन कर धर सरके, कैसी कीन्ह॥

खटकत मोर करेजवा, मुसकन मंद ।
का विधि छूटहि हा हा, कोमल फंद ॥

मंद मंद मुसकनि ते, गाफिल पारि ।
जा विच भौंह कटाछन, लीनेउ मारि ॥

ए हो मीत जाय उत, सुधिहु न लीन ।
विरह-विथा किय तन को, छिन छिन छीन ॥

मीत मोर जिउ सगुन जु, अच्छर आहि ।
बसत अरथ मति ताते, क्यों बिलगाहि ॥

साजन कथा विरह की, लिखी न जाय ।
कहिहैं ये अंवुद उत, कछु समुझाय ॥

मीत भये मोसों क्यों, कठिन महान ।
चलन चहत है अब तौ, पाँचहु प्रान ॥

दोनो मीत जुदे हैं, विपति वलाय ।
गिनहुँ ताहि मैं संपति, कही न जाय ॥

(६)

झाँकी-झाँको
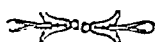
बाँकी-झाँकी

१

जियरे धक लागी हैं विरहानल ज्वाला की।
मानों क्यों पूँछो तुम बातैं मतवाला की॥
औरत हम स्यामा उपवन मैं अवलोकी थी।
झटपट के लटके पर नजरों को झोंकी थी॥
औरों सब सखियों के आगे चलि आती थी।
रीझी रिझवाती अरु गाती थी गवाती थी॥
दार्‌यो कन दाँतों पर मिस्सी दिलवाई थी।
तापर मिल सखियों ने बीरी खिलवाई थी॥
झुक झुकते लटकन पर वेसर के झाले थे।
प्यारे रस छकि याने नैनों के प्याले थे॥
वासन विच जाहर गति जूड़े की वाँकी थी।
धानुष'के नागन छवि ऐसी उपमा की थी॥

माजिम पर सोहैं कर भौंहैं मटकाती थी।
खींचे रसिकन के मन भीतर खटकाती थी॥
लोयन के कोयन पर अलकैं दो लटके थी।
भारी मत कवियों की उपमा को भटके थी॥
चटकीले चेहरे पर वंदी छवि दै दी त्यों।
चंद्रासन बूड़न भा हैं दीसर में दी त्यों॥
भौंहैं अलसोहैं टुक टेढ़ी कर भाले थी।
जाले दिल आशक के तिनको फिर जाले थी॥
आँखों पर काजर की रेखैं अधिकाती थी।
प्याले मोहवत के भर पीती अरु प्याती थी॥
वातैं मुख पंकज ते क्या अच्छी वोली थी।
खातिर वा प्यारे के चित की वृत खोली थी॥
साँचे की ढाली सी वहियों पर सोहे था।
मनमथ की फाँसी ज्यों वाजूवँद मोहे था॥
नखरे ते सखरे पर वंधो पर नचती थी।
जाचक हुय आँखों वा रूपहि को जचती थी॥
दावन के दोरों पर जरकस कुछ दमकी थी।
चकचौंधी पड़ पड़ कै आँखैं दो चमकी थी॥
दुपटा उड़ घूमर ते नाभी टुक दरसे थी।
प्यारे की अभिलाषा तरसे थी परसे थी॥

ताली के पटका पर चटकी का लटका था।
भटका था खटका इक झटका दो बटका था॥
झांझर झरनाहट पर जेहर का झनका था।
ठुमके गति ढीली पर बिछुवन का ठनका था॥
भुज उलटन झुकने पर छूटन गति भिड़ती थी।
झाला जुत गुजरी नग बिजुरी-सी झड़ती थी॥
गोरी-सी बहियों पर गुघरी गरज़ावे थी।
झुम झुमके लहँगे पर काँची झरनावे थी॥
जुमले संग आलिन के झूले चढ़ झूले थी।
हस्ती मतवाले मन मेरे को हूले थी॥
मसके तन ससके रस बस के मदमाती थी।
कातिल को फिर कातिल करने की काती थी॥
बानिक ते बागन में सखियों विच बैठी थी।
आसक बेलासक चखनासक विच ऐंठी थी॥
जाके चख अनियारे लागे सोइ जानैंगे।
मुखड़े की बातैं बिन भुगते कस मानैंगे॥

२

यारो निसि सोवत इक सुपना-सा आया था।
जाको लखि मेरे उर आनँद-घन छाया था॥

सो उसको जाहर कहि कछु यक वतलाऊँ मैं ।
गाना नहिं वाजिव पर कछु यक तो गाऊँ मैं ॥
देखा महलायत एक पलकों के लगने में ।
वैसी कहिं पेखा ना जाहिर विच जगने में ॥
उसकी तैयारी थी मानिंद गुलक्यारी के ।
जिसके थे परदे चिक किम्मत जर भारी के ॥
सोंधे के झोले उस भीतर उठि आते थे ।
जापर मतवारे ह्वै मधुकर झुकि जाते थे ॥
थी उसमें दीपक की वत्यौं की मालें-सी ।
जिस पर थीं फानूसें मनमथ की जालें-सी ॥
निश्चल-सी जोतिन की उपमा दरसावे थी ।
मौनों वैरागिनि मिलि ब्रह्म ही को ध्यावे थी ॥
उनहीं आवासों ढिग सुंदर वागीचा था ।
मानहु द्रुम सारे जल अमृत का सींचा था ॥
जामें वहु केकी अरु कोकिल मिलि बोले थी ।
उरझे मनवालों की गाँठें सव खोले थी ॥
वैठी थी वुलवुल उस भीतर वहु न्यारी-सी ।
आँखों विच सव ही के लगती अतिप्यारी-सी ॥
मजलिस उस जग्गे की ऐसी दरसावे थी ।
उपमा को हेरत मेरी मत घवरावे थी ॥

थे उसमें कारीगर गाने के कामिल वे।
गाफ़िल हुइ जावें सुनि अच्छे दृढ़ आमिल वे॥
आसव के सीसे रँग रँग के मँगवाये थे।
प्याले मतवारों युत सबको पिलवाये थे॥
खिंचती थी काफिरनीं सारंगि यों कूके थी।
चतुरों की पसल्यों बिच कूके मनु हूके थी॥
तब लों सिर थापी लग लच्छैं परदों के थे।
मन घट दोनों वे पूरन दरदों के थे॥
सारा तन आँखों बिच आतस का ज्वाला था।
कानों बिच जाके लघु दामिनि-सा वाला था॥
तानों की उपजों कर कानों धर लेती थीं।
आसक्त मतवाले गज अंकुस सिर देती थीं॥
हसना कहि बोलों को तीखे दृग कसना था।
फेलों की घातों बिच नाहक दिल फँसना था॥
पाऊँ धर डिवड़े गति झूमे झुकि जाना था।
हाँतों की घातों कमनैती दिखलाना था॥
जिनके मुख आगे कुसमायुध सरमाता था।
इनकी-सी उपमा को वो भी कब पाता था॥
उनके कर कंगन सँग चुरियाँ यों चमके थीं।
ऊपर सब मजलिस के सोरों यों झमके थीं॥

यारो सब वीतत ही आँखैं गइ मेरी खुल।
जगने पर आया नहिं नजरों विच एकौ गुल॥

(७)
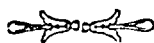
संगीत-सुधा-बुन्द

दिल दे दीदे खोल दिवाने ।

रब की कुदरत देख जल बिंदु ते देह बनि विविध भूषन भेष।

बोलत गिरा अमृत सम सुंदर जाके रंग न रेष ॥

दिवाने दिल दे दीदे खोल ॥

पाँच तत्त्व चेतन काहे ते डोलत त्रिविध विसेष ।

जा बिन शुष्क काष्ठवत छिन मैं सोही पुरुष अलेष ॥

दिवाने दिल दे दीदे खोल ॥

मात पिता बंधू तिय भाई मित्री पुत्र सुवेष ।

प्रान पयान समैं सब ठाढ़े करत कुलाहल पेष ॥

दिवाने दिल दे दीदे खोल ॥

काम क्रोध मद लोभ मोह बिच बूड़े सब उनमेष ।

नर तन मूढ़ करत गरुवाई तूँ उस पाक परेष ॥

दिवाने दिल दे दीदे खोल* ॥

ह्याँ बिचालाँ प्यारी लार पिहरिये ह्माँरे ।

डूँगरिया हरिया जल भरिया सूरा तणी सिकार ।

नटनागर हरस्याम न कर स्याम दड़ारी मनुहार† ॥

---

* भीमपलासी

† सारंग

प्यारे प्यारी कर कै विसारोगे , कैसे रहैंगे प्यारे प्रान ।
नटनागर दुख दाप सहौंगी , ना कीजै हित हान ॥
प्यारे प्यारी कर कै विसारोगे , कैसे रहैंगे प्यारे प्रान ॥ *

नँनदी काहे को भौंहा रे वाँके कस्यो ही करै ।
मेरी लागी है विहारी जू सों लाग लाग लाग ॥
कुलकानि के ऊपर अब ही धर दी मैं तो आग ।
नँनदी काहे को भौंहा रे वाँके कस्यो ही करै ॥
नटनागर उजागर सौं मेरो मन पाग ।
तासों मिलूँ मैं तो तन मन धन सुख त्याग ॥
नँनदी काहे को भौंहा रे वाँके कस्यो ही करै ।
काहे को अधर तेरे डस्यो ही करै ॥
मेरी लागी मोहन जी सों लाग† ।

वंसी ! मन वस करि मति मार,
वैरिन हाथ लगै का तेरे ॥
तेरे दुख अति दुखित भई हूँ,
तासों कहति पुकार ।

---

* दादरा
† कहरवा

नटनागर बेदरद निठुर हैं,
तू तौ नेकु विचार ॥

आँखाँ लाँबी तीखी बाँकी,
सुरँग-भरी रु रँगी रंग-भरी।
नटनागर ऊँची पुनि नीची,
बाँकी और तिरीछी।
बाँई सलज दाहिनी चितवनि,
विषम डसत जनु बीछी ॥
आँखाँ लाँबी तीखी बाँकी,
सुरँग-भरी रु रँगी रंग-भरी।

मांड्या ही मनास्याँ रूठो, छेये धूलो ह्माँसू हे।
ओलू भासुणां लाहिली, ओठा ही सुणांस्या।
नटनागर समुझास्याँ ॥

ह्माने तो लारां लीजो राज।
थाँ कारण कुलकांण गमाई छेह न दीज्यों राज।
ह्माने तो लारां लीजो राज।

नटनागर बृन्दावन कीनीं वा मत कीज्यो राज।
ह्माने तो लाराँ लीजो राज।

लोयण विच फैल भर्‌्यो छेके फंद।
कपट भर्‌्यो छेके प्रीति भरी छे भूत भर्‌्यो छेके जंद।
नटनागर ह्मांने ठीक पड़ी नहिं साँची कहो जी मुकुंद॥

काहे विष घोर्‌्यो राधे नैणां बीच।
घोर्‌्यों से तेरे चख कजरा है नागर भौंह नगीच।
नटनागर कूँ जहर चढ़ो छे सुधा दृष्टि करि सींच॥
काहे विष घोर्‌्यो राधे नैणां बीच।

मार्‌्या इनाखे छै थारा सौंह।
नटनागर तिरछी सी चितवन, जग ठगणी छै लगणी भौंह॥
मार्‌्या इनाखे छै थारा सौंह।

देख्याई जिवाँ छाँ प्यारा सेण।
अजक लगी छे अब तो, देख्याई जिवाँ छाँ प्यारा सेण।
झलमल मुकुट कुंडल रो झालो, वाला लागे छाँ थारा वेण॥
देख्याई जिवाँ छाँ प्यारा सेण।

नटनागर निरखण तो नखरो, मत जी चुराओ वाका नेण।
देख्याई जिवाँ छाँ प्यारा सेण।

आछाँ रीज्यौ आप ह्माँनै विसर मत जाज्यौ।
मथुरा जायज्यो छाय रहो तो, पतियाँ वेगि पठाज्यों।
नटनागर ऊजड़ कर चाल्या, ब्रज हरि फेर वसाज्यों॥
आछाँ रीज्यों आप ह्मानै विसर मत जाज्यौं।

हो जी हट छाँड़ो राधे जी निपट निठुरताई जोर।
आप तणाँ झगड़ा मैं राधे अव तो ह्वै है भोर॥
नटनागर निरखण दो नखरो जितिहारो गूँघट कोर॥

निपट अनोखा लोयण सुरंग भर्‌या।
अति अलसाण उनींदापण सूँ जनु दोय लाल धर्‌या।
नटनागर क्यूँ कपट करौ छे जाहर जाग कर्‌या॥

कांई अणि आला नैणा लाग मरी।
जो देखे जाको मनही मसत है कैसी जक पकरी।
नटनागर विन मोल की चेरी गोपी भाग भरी* ॥

---

* सोरठ

ह्माँनैं तो करोहींगा जी दिल सूँ दूर।
नवल नेह कुबज्या सों कीन्हों उणके रहत हजूर ॥
ह्मासूं तो अपराध वरायो छे भूलो क्यूँ न जरूर।
नटनागर के दोय मुसाहिव वे ऊधो अक्रूर ॥

ओ लूड़ी आवै छे निराट।
ओ जियो छे गाला थांरी ह्माँनै, ओ लूड़ी आवै छे निराट।
प्राणपती जी ऊमर ह्मारी वीती जाताँ वाट।
नटनागर क्यूँ विलम रह्याछो विकटहु वाकी घाट ॥
ओ लूड़ी आवै छे निराट।

वनी चित लाज मनोज सतावै।
दोऊ विच जिया दुख पावै, वनी चित लाज मनोज सतावै।
लाज कहत नटनागर लिखना मदन सला उलटावै ॥
ऐसी रीति विलोकत लौकिक चतुरन के मन भावै* ॥

वना जी तेरी सूरत मदन सँवारी, सव निरखि छके नर नारी ॥
रतन जटित सेहरा सिर सोहत, कलँगी की छवि भारी ॥
नटनागर दूलह उत दुलहिन, श्री वृषभानुदुलारी* ॥

---

* वना

वना जी थारी लटक चाल पर वारी ।
सब निरख छके नर नारी, वना जी थारी लटक चाल पर वारी ।
सूवा पाग केसरिया जामा, जापर गजब किनारी ।
नटनागर ऐसी छवि निरखत, दुलहिन राधा प्यारी* ॥

लाग्यो थाँरा नैणारो सलूणों पाणी लाग्यो ।
लोकलाज सब ही तजि दीनी गुरुजन रो भय भाग्यो ।
नटनागर ज्याने छेह वतायो सूताछो किना जाग्यो ॥
लाग्यो थाँरा नैणारो सलूणों पाणी लाग्यो† ॥

दीठो थाँरी प्रीति रो पतंगी रंग दीठो ।
लागत वेर कसूँबी सो लाग्यो फिर रह्यो नहिं छीठो ।
नटनागर ह्मां वहुत रचायो नाहिंन होत मजीठो ॥
दीठो थाँरी प्रीति रो पतंगी रंग दीठो† ।

रसिया जी वेरा जी वोलो जी भलाँ ।
थाँरा चितरो चाह्यो कीनौं जी भलाँ ।
ज्यो चाह्यो सव ही थाँ कीनों, मनरी गाँठा खोलो जी भलाँ ।

---

* वना

† कालिंगड़ा

नटनागर मेटो जी झगड़ो, लीजे न वलमा होलो जी भलाँ ॥
रसिया जी वेरा जी वोलो जी भलाँ* ।

लागी लागी जरूर भोरी नजर कहुँ लागी ।
नटनागर की सौंह करत हौं विरह-विथा तन जागी ॥
जरूर भोरी नजर कहुँ लागी† ।

लागे लागे जरूर नैना कुटिल कहुँ लागे ।
नटनागर जाहर गुन गुनियत प्रेम उदधि कहुँ पागे ॥
पागे जरूर नैना कुटिल कहुँ लागे† ।

बाँका थारा नैण अदाँ का उड़ि लागै ।
लागत ही सुध बुध विसरावैं रोम रोम विष जागै ।
नटनागर तन मन धन सौंप्यो अब कहि जियरो माँगै† ।

घणा सा घर घाल्या नोखा नैनानै ।
इण व्रज की उपहास न अटक्या होय मसत मद हाल्या ।
नटनागर वरज्या नहिं मानै वरजत ही वढ़ चाल्या† ॥

---

* कालिंगड़ा
† दादरा

दीठी दीठा नैणा री अनोखी गति दीठी।
अंजन सहित बिहद हद बाँकी मद छक लागत मीठी।
नटनागर उर कंप कढ़ण को अद्भुत दोय अँगीठी* ॥

मद छाके नैणां बाँके बिन अंजन अधिक अदाँ के।
कंज खंज मृग मीन विनिंदित होत कटीले डाँके ॥
नटनागर उर पार कढ़त हैं निरखत नैन निसाँके* ॥

मोरे नैना रहत छवि छाके।
छाके छाके अघाय मोरे नैना रहत छवि छाके।
नागर नट लखि लटक रीझिगे ये रिझवार अदा के* ॥

कहो जी क्यूँ न आओ आओ ह्मारे देस।
मूरति कोटि मनोज लजावण क्यूँ देखण तरसाओ।
नटनागर ज्यों ढील करोला तो पाछे पछिताओ ॥
कहो जी क्यूँ न आओ आओ† ।

---

* दादरा
† कालिंगड़ा।

खमाँ खमाँ जी कर हारीं छलवलिया थाने ।
अंजन अधर पीक पलकों पर ई छवि री वलिहारी ।
नागर नट अलसाणा अनोखी छाय रही छवि थाँरी* ॥

ज्यानी जी से जुदी मत कीज्यो रे मत कीज्यो दुख मत दीज्यो रे ॥
नटनागर तेरी चेरी की, छिन छिन में सुधि लीज्यो रे† ॥

ज्यानी तोसे कवँ ना वोलों रे। ना वोलों ना वोलों ना वोलों रे॥
नटनागर तोसे कपटी सों, कपट गाँठ ना खोलों रे† ॥

सोवन दे सैयाँ नेक ढरक गई आधी रैन ।
नटनागर अति नींद सतावत नीठि समै अव लादी रे† ॥

खेडोंदा जाणां नहिं खूव मियाँ वे ।
नटनागर नटखट लोग वहाँ सव, जालिम महवूव मियाँ वे‡ ॥

छँदड़े जानी तैंड़े वो जिंदड़ी मैंडी ।
नागरनट तैंड़े देखे विन वेकलियाँ दिल नूं‡ ॥

---

* सोहनी

† ठुमरी मुलतानी

‡ टप्पा ज़िले का

हरदम रेदी तैंड़ी याद मियाँ वे।
नटनागर तैंड़े बिन मैंड़ा दिल करदा फरियाद* ॥

इसको दा उलझेड़ न सुलझेगा ज्यानी वेड़।
नागरनट अब क्यों घबराँदा ज्यों निबड़े ज्यों निबेड़ *

सांडे नाल बेदिल नूँ किता बरबाद।
नागरनट ज्यों ज्यों दुख दैंदा कित करदी फरियाद* ॥

ऐ धुला पना सूँ हेली हे माड्याँ ही मिल्यालाँ।
नागरनट ह्याँ सूँ मुरड्या छे दाँवण जाय झिलालाँ* ॥

प्यारे साढ़े मुखड़े दा झमका दिखालादे। हाहा तैंड़े मुखड़ेदा।
नटनागर कछु और न चाँदा अज दीदार छकादे* ॥

झाँकी करा दे तैंड़े बाँकी न नजरा की मानूँ।
नटनागर वे अदा की आँखें विषलाने विच की दुख सानूँ* ॥

मचल रह्यो बृषभानुलली सों।
नटनागर चित बहुत निठुर है, कटि कुच मारे गुलाब कली सों† ॥

---

* टप्पा ज़िले का
† झंझौटी

मिठणी तैंड़ी मैं मीठे बोल सुणांजा मानूँ।
नागरनट इक गल्ल सुणांदे जा विच वार लगै का सानूँ* ॥

जटियों दे जालिम नैण वचाणां।
जाहिर नैन जटींदे जालिम लूँ की कारण हेत निसाणां* ॥

साढ़ी गलियों विच आणां न भादा सानूँ।
गोरे देना लयारदी वातें दिल उस्याक दुखाँदा कानूँ* ॥

जियरा जाय रे नजरिया लागी।
नटनागर कोइ वेगि बुलावो, अजब विथा तनजागी ॥

हेली ह्माँने निंदिया न आवै।
छिन छिन विरह सतावै, हेली ह्माँने निंदिया न आवै ॥
नटनागर सुधि भूलि गये छे, कुण वानैं समुझावै ॥
हेली ह्माँने निंदिया न आवै।

धीरा धीरा हालोरा विहारी जी, लाराँ थारी आवाँ।
सब सखियाँ ह्माँरी गेल पड़ी छे पाछी फिर समुझावाँ।
नटनागर थाँ प्रगट करो छो ह्मे छाने छाने प्रीति छिपावाँ ॥

---

* झँझोटी।

दुख मत दीजो जी प्रीति लगाय। हो जी रूखा बचना रोजी॥
फीका नयणा रो जी। दुख मत दीजो जी प्रीति लगाय॥
नटनागर ब्रजबाल विसारी यूँ विसारो हाय।
दुख मत दीजो जी प्रीति लगाय* ॥

वारी कर दीज्यो नाँ सुरत विसार।
हो जी मन मोहन प्यारा जी। वारी कर दीजो नाँ सुरत विसार॥
छलबल निपट कपट पट करणी राखत हो रिझवार।
नटनागर सुनि गोपियन की गति डरपत प्राण अधार* ॥

नैना हमारे दुख्यारे भये सखियाँ। नँदवारे कारे विना॥
कारे विना वंसीवारे विना।
नटनागर दृग उमँग चलत हैं प्यारे तिहारे निहारे विना† ॥

नटनागर मचल रह्यो माई। नटनागर—
होत अकेलो तो खबर पारती। ऐ री संग लिये हलधर भाई॥
नटनागर मचल रह्यो माई। नटनागर—
जा दिन मुकुट पीत पट छीन्यों। ऐरी वा दिन की सुधि विसराई॥
नटनागर मचल रह्यो माई। नटनागर—

---

* ख्याल।
† भैरवी ठुमरी।

डफ बाजत गरूर भरे।
नटनागर की विजय उचारत, द्वार द्वार हुरिहार परे॥
डफ बाजत गरूर भरे।

डफ बाजत कुटिल कन्हाई के।
नटनागर के ढीठ लँगर के, हलधर जू के भाई के॥
डफ बाजत कुटिल कन्हाई के।

जमुना-जल भरन कठिन आली। जमुना-जल—
मधुर मृदंग झाँझ डफ बाजैं, गत नाचत हैं बनमाली।
निलज निसंक निपट नटनागर, जाहि ताहि को दे गाली॥
जमुना-जल भरन कठिन आली। जमुना-जल—

मन लाग्यो मेरो नँनदी क्यों बरजै।
नाहिंन संक निसंक भई मैं, उमड़ घुमड़ गोकुल गरजै।
नटनागर सों मिलूँ उजागर, त्रास बताये को तरजै॥
मन लाग्यो मेरो नँनदी क्यों बरजै।

डफ आगे जा बजा रे सारे भरम धरैं। डफ आगे जा बजा रे—
सासु की त्रास उदास रहौं हौं, नँनदी नाचन हास करैं।

नटनागर पग फूँकि धरैं तऊ, चतुर चुगुल लखि चौंकि परैं।
डफ आगे जा बजा रे सारे भरम धरैं।

नटनागर छैल अनोखो री। नटनागर—
हमैं तुम्हैं डर नाहिं सखी री, जो कुलवान तिन्हैं धोखो।
लाल गुलाल अंग लिपटाने, स्याम बरन तन चोखो।
मोरमुकुट पीतांवर सुंदर, कुंडल को हद झोखो।
नटनागर छैल अनोखो री। नटनागर—

सखी री आज स्याम अनुराग-रँगे,
मोंसों खेलन आये फाग।
उर द्वै चिह्न श्रौर पद अंकित,
तुरत सेज सुख त्याग।
चिबुक अरुण अधरा कजरारे,
रहे महा श्रम पाग।
सखी री आज स्याम अनुराग-रँगे,
मोंसों खेलन आये फाग।
रद-छद-रेख नखच्छत लागे,
किये नैन रत-जाग।
नटनागर ऐसी छवि निरखे,
उदै भये मम भाग।

सखी री आजु स्याम अनुराग-रँगे,
मोसों खेलन आये फाग ॥

सखी आजु स्याम को पकरि नचाऊँ,
तौ वृषभानु-कुमारि।
अंजन आँजि करूँ दृग कारे,
गुहि डारौं उर हार।
चाली चारु चटकि रँगि चूनरि,
पाँयन पायर पारि।
सखी आजु स्याम को पकरि नचाऊँ,
तौ वृषभानु-कुमारि।
वेंदी भाल कान विच झूमर,
वनिता ज्यों गुहि वार।
नटनागर ऐसी छवि निरखी,
फेरि करौं हुरिहार।
सखी आजु स्याम को पकरि नचाऊँ,
तौ वृषभानु-कुमारि* ॥

अकेली पार कै मोकूँ भिजोय डारी रे।
ढीठ मोकूँ रंग मैं भिजोय डारी रे ॥

---

* काफ़ी दीपचंदी

कुटिल मोंकूँ रंग मैं भिजोय डारी रे।
नागरनट तो सों समझौंगी,
निठुर मोकूँ पकरि भिगोय डारी रे।
दइया रे मोकूँ पकरि भिगोय डारी रे।
निलज मोकूँ पकरि भिगोय डारी रे॥

पनघट पर झुरमुट जटियों दा।
जटियों दा नटखटियों दा॥
नटनागर वहै वाट कढ़ौ कोऊ।
झटपट है दा नटखटियों दा॥
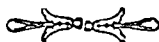
(८)

स्फुट-सुमन-संचय

स्फुट-सुमन-संचय

(१)

ऋतु-उद्दीपन

वसंत और फाग

अंब के मंजुल मौर कढ़े,
चलि बाग तड़ाग पै कीजै समागम।
पी परदेस न जाइबो जोग है,
जाइ हैं तो उर में दुख दागम॥
जो न करौ नटनागर चंचल,
मानिये स्याम कबूक तौ खागम।
गायो है राग गुनी रस छायो है,
आयो है कंत बसंत को आगम॥

कैहैं कहाँ सुनौ बीर बटोही न,
गैहैं ततो उनको समुझै हैं।
लैहैं कबै सुधि नागर सों,
कहो पैहैं महादुख को सुख दैहैं॥

ह्वै है महा मदनज्वर जीय तों,
ओस की बूँद लौं खोज बिलै हैं।
ऐहैं बसंत बजैहैं बयारिन,
ऐहैं पिया जम के गन ऐहैं॥

इत की सुधि दैहै गुलाब प्रसून तैं,
अंबहु मौर दिखावहिंगे।
अरु कोकिल कीर कपोत कलापी,
महा मधुर स्वर गावहिंगे॥
नटनागर बागन आगि सी लागि है,
धावन भौंर हू धावहिंगे।
इतने हैं वकील हमारे सखी,
का बसंत पै कंत न आवहिंगे॥

ए हो बटोही बिथा की कथा को,
सुनाय कहो नटनागर जाहीं।
आइ बसंत दहंत है देह को,
द्योस निसा कछु ही नहिं भाहीं॥
हा अब बीर इती बिनती,
समुझाय सुनाय कहो उन पाहीं।

पाँचहु प्रान प्रवास बसे,
उड़िहै ज्यों कपूर बघूर की नाहीं ॥

ऊधम ऐसो मच्यो नटनागर,
श्री वृषभानु-सुता उमही है।
होरी है होरी है होरी कहैं सब,
झोरी गुलाल है ढोरी गही है॥
ओज सों आजु समाज सबै,
गहि बोरत दौरत मौज मही है।
केसरि हौज पै चोज भरी सु,
मनोज की फौज सी फैलि रही है॥

जित ख्याल रच्यो है अजूबा सुन्यो,
कछु जानी नहीं मैं चली गई बाग।
जब देखे तहाँ नटनागर को,
कहि ऐसो कहाँ पै लग्यो उर दाग॥
सुनि मोहिं बबा की सौं चाह नहीं,
या लगी है अनोखी सी आँखन लाग।
गाजि गाज परो सिर मेरे भटू,
सु लगो यहि फाग के सीस पै आग॥

गावत गोपाल ग्वाल वाल वे जिभार मिलि,
डोलत प्रलापमय बोलत कसन ते।
ढोलक सितार वीना बाँसुरी बजावैं धावैं,
गहि गोप सखा वधू होरी के मिसन ते॥
नटत निकट नटनागर निहारि सखी,
छिपी निज छाँह बीच बेबस नसन ते।
बत्तीसो दसन ते वे रसना को दावि रही,
रसना को दाबि रही पल्लव दसन ते॥

झोरी भरि दोरी कोऊ रोरी लै मचावै सोर,
बौरी सी फिरैं हैं गोरी कहैं बैन जोरी के।
कोरी न रहैंगी चोरी पीतहू पिछौरी आजु,
लोक लाज छोरी भोरी बोरी रंग घोरी के॥
ठाढ़ी निज पौरी औा उचारति यों थोरी थोरी,
कोऊ जाय खोरी नंदराय की कहोरी के।
नागर जू घोरी रारि जुद्ध है वढ़ोरी देखा,
होरी के समाज कढ़े कीरति किसोरी के॥

पिय पीतम पागे पराई तिया,
दिवरा सोऊ डोलत बागन मैं।

ससुरा अरु सासु पुरान सुनै,
नित पागो हिया दुख दागन मैं ॥
नटनागर एक रही ननदी,
सोऊ नेह कहूँ चित लागन मैं ।
दुख भागन में निसि जागन में,
दिन कैसे कढ़ौं यहि फागन में ॥

अति कीन्हों दगा दुखदायनि ये,
सु दिखावन फाग कह्यो जब रीझगी ।
सुनु, मोकों नवीन लखी नटनागर,
आन वधून के धोखेहु धीजगी ।
छल ही छल सों छिपि छाहन मैं,
ढिंग छूवत छैल की छाँह सी छीजगी ।
खीजगी मींजगी नैकु छुई फिरि,
भीजगी सीजगी हाय पसीजगी ॥

पावस ।

गावन लगे हैं अति पावन मलार गुनी,
आवन हू मिंत को हमारे कान नाय दे ।
झिल्ली केकी चातक औ दादुर के बोलन मैं,
बिष सों भर्‌यो है तामैं अमृत बसाय दे ॥

कानन मैं प्यारे नटनागर पधारिबे की,
अवधि सुनाय अर्ध मृतक जिवाय दे।
सावन को आवन सुनायो पिक रावन ने,
आवन जू भावन को धावन सुनाय दे॥

लाल अरु पीत स्वेत स्याम उठे चारों ओर,
घोर अति भारी जोर भरे आत जात हैं।
धूजति है धरनी विहार लखि बादर के,
प्यारे नटनागर के वियोग ते न भात हैं॥
ए री मेरी वीर धरि धीर तू निहारि नीके,
मेघ मति मान तेरे नाह प्रानघात हैं।
दासरथी राम रन रोखे दसमाथ सीस,
जाकी वाहनी के रीछ वानर दिखात हैं॥

ठौर ठौर मोर मुख मोरि ये करै हैं सोर,
चोर चित चातक चवायन मचावैं क्यों।
जाही पर दादुर ये दाहत है मेरो दिल,
झिल्ली पिक झार झार झीनों झीनों गावैं क्यों॥
हारि हारि हा हा खाय कहौं सिर नाय नाय,
विरह तौ नागर को काऊ विधि भावैं क्यों।

दौरि दौरि आवैं इत कारी घटा जोर जोर,
घोर घोर हाय बरसाने बरसावैं क्यों ॥

औघट अनोखे घाट सूझति कितौ न बाट,
नाचत मयूरगन जोवन उपट्टे मैं।
गाज घनघोर घोर सोर पिक चातक के,
जुगनू उदोत होत कुंज के चुहट्टे मैं ॥
राधे नटनागर जू खड़े थे कलिंदी कूल,
भीजत दुकूल खुले पौन के झपट्टे मैं।
चपला चमक देखि चपल चमकि चली,
दौरि दौरि दूरि ही तैं दुरत दुपट्टे मैं ॥

बद्दरन घोर जामें दद्दरन सोर भारी,
नद्दरन खार तार लहैं गति पूर की।
झींगुरन सोर हू पपैयन की रोर पर,
जोर बंध कोयल के छिपी गति सूर की।
ऐसे माँहिं कुंज पुंज गुंजत मधुपगन,
आगर चलो न नटनागर हजूर की।
दहक खद्योत महकत पुरवाई पौन,
लहक लतान तापै कुहुक मयूर की ॥

प्यार दिन चारि कर वदलि विहार कीनों,
आई रितु वरषा की मानों मीच चेरी-सी ।
कारे अति भारे न्यारे वादर विकट दौरैं,
वीच वीच विद्युत-लता है काल मेरी-सी ॥
नैन नटनागर निहारे विन रोय-रोय,
आँसुन उमंड़ करी ओलन की ढेरी-सी ।
नेह की उजेरी सो तौ निकट न पाई हाय,
आँखिन हमारी आगे आवति अँधेरी-सी ॥

लोचन-लावण्य ।

(२)
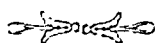
लोयन तिहारे आन उपमा न धारैं आजु,
मानों दुज वाल वीच कंज पत्र सकरे ।
कैधौं मकरध्वज वनाय रूप मीन ही को,
नागर जू पाट जाल वाहन द्वै पकरे ॥
कैधौं रतिराज आज वनिकैं सिकारी मीर,
खंजन द्वै डारे पिंजरा के वीच अकरे ।
कारे घुँघुरारे वार वीच मतवारे नैन,
मानौं उनमत्त द्वै जँजीरन सों जकरे ॥

जाने न आजु लौं ऐसे विषाददा,
द्वैक दिना ते किते बढ़ि चाले।
मानै न कैसे भये बरजोर,
मतंग ये मैन के हैं मतवाले॥
सोहैं लला नटनागर की विष-
रूप वियोग के हौद विसाले।
काहे प्रतीति करी इनकी,
इन नैनन हाय घने घर घाले॥

देखी नटनागर अनोति रीति आँखिन की,
अंग सब ही ते मंजु अति बरजोर है।
मृदुल महा है गति सुच्छम लखात नाहीं,
रदन करी ज्यों जाको अभिप्राय और है॥
ढीली ढीली भौंह तर रहत लजीले हहा,
तीखी तीखी देखिये अनोखी सीखी दौर है।
कारी कजरारी ढाँपी रहत विचारी तऊ,
हेतु सुकुमारता की कारज कठोर है॥

हे बृषभानु-लली दृग एते,
लड़ैते किये कहा फेल की फूली।

तेरिये सेज विनोद मैं वावरी,
मेरे लला की कला सव भूली ॥
वा नटनागर के पद के तल,
ता छिन हीं उड़ि कै गई धूली ।
ज्यों परै दूरि त्यों पीछे चितौति,
तिरीछे से नैन सनेह की सूली ॥

जव ते यह वानि कुवानि परी,
तव ते कुलकानि दई सव खवै ।
नित मिंत के रूप निहारिवे को,
पल ते पल नेक गई नहिं छ्वै ॥
समुझाय थकी नटनागर जू,
विन औसर ही उमहैं चलैं च्वै ।
चष रूप खिलौनन धारिवे को,
हठ रूप भयो मनो वालक द्वै ॥

सुनु प्यारो सुजान तिहारे दृगान मैं,
अंजन काहे को सारिवो है ।
उलटावन चंचल खंजन सों,
यह भौंह त्रिवंक न पारिवो है ॥

सब हाव रु भाव लिये सँग ही,
तिरछी सी चितौनि क्यों धारिबो है।
नटनागर के न कढ़े नटसाल,
ये सूधो निहारिबो मारिबो है॥

आँखैं जा दिन ते लगीं, जगीं बिरह की ज्वाल।
अरी ठगौरी तैं ठगे, नटनागर नँदलाल॥
नटनागर नँदलाल, छैलपन सबही भूले।
कृसित भये तन ताप, फिरत थे फूले-फूले॥
उझकी दोऊ रहत नहीं, लगती पल पाँखैं।
महा हलाहल गहर कहर, करि डारी आँखैं॥
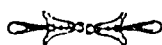
सोरठा-सौष्ठव

(३)

थिर ह्वै लहै न थाह, प्रीति कूप सब ही परे।
निहचै कठिन निवाह, करते कछु नाहिंन कठिन॥

है यह बात अनूप, अचरज मानत मोर मन।
बिन सीढ़िन के कूप, परैं मरैं फेरू परत॥

नाहिंन कढ़न उपाँव, प्रीति उदधि मों हैं परे।
नहिं नावक घरनाव, नहिं मलाह नहिं तूमरा॥

लागि उठि उर आगि, बुझति न पागे उदधि में।
बूड़ि कढ़े लै थाग, झाग वहत मुख द्वार ह्वै॥

कुल-करनी-धुज धार, लोक-लाज की नाव-कर।
चाहै पहुँचन पार, करनधार कर वेद मत॥

जापै निधरक नाच, वरत बाँधि निज सुरत की।
जव मानै जग साँच, गेंद वना ले सीस की॥

वान नैन संधान, भौंह कमान कसीस कै।
मानहु मदन निसान, छूटत उर में रुपि रहे॥

फार लई चित धीर, नैन वान दुख खाय कै।
पंचवान की पीर, तात न वाधा क्यों करै॥

भौंह कमान कठोर, कान बराबरि तानि कै।
त्रान त्वचा तन फोर, नैन वान निकसत भये॥

अँचै मदन मन ओप, रितु बसंत जोवन लहर।
लज्जा अंकुस लोप, मन मतंग उनमत फिरै॥

बृच्छ लगावत कोय, पय प्यावत रच्छा करत।
तोसों कैसे होय, बोय बड़ो करि काटिवो॥

इस्क अजब उरझेर, पर्‌यो आनि मों सिर पसरि।
चाहूँ कियो निबेर, नहि सुरझत उरझत अधिक॥

ये हो मीत अनीति, कीनी तैं मोसों कठिन।
हा कैसी यह प्रीति, सुख लै दुख बदले दियो॥

है व्याधी मन माहि, सो तू जानत नेक ना।
नसतर काढ़त काहि, तन रग छेदे होत का॥

हित करि अधिक हँसाय, भोरे ह्वै अति भूल दै।
फंदन बीच फँसाय, नैन कुटिल न्यारे भये॥

नैना निपट अन्याय, कियो सो कैसे मैं कहौं।
अब यह देखो हाय, कर कानन धर दूर ह्वै॥

फंद बंधन सिथिलात, काल कठिन गाफिल बधिक।
मन खग क्यों अकुलात, अब का उड़ि है छूटि कर॥

चित्र मित्र को चाहि, लखत न लोयन लालची।
मत मैलो ह्वै जाहि, नित प्रति ध्यान कियो करै॥

महामोह तम कूप, जानि बूझि कैसे पर्यो।
है तहँ स्वाद अनूप, पर पाके जाको मिलै॥

एहो मिंत बिसारि, वृत्ति कठिन धारी कहा।
मारन ह्वै तौ मार, कै उबार निरबंध करि॥

बरसत है रितु एक, उमड़ि मेघ अति गरब जुत।
क्यों न होहि बितरेक, षटरितु चष बरस्यो करै॥

प्रेम रूख निरमूल, कियो चहै दुरजन बचन।
होत सघन फल फूल, क्रेस सुधाजल पाय कै॥

दुरजन बचन कुठार, छेदत निसि दिन प्रेम-तरु।
छिन छिन बढ़त बहार, प्रीति-तोय पोषन किये॥

छुई न बिपति सरीर, बात बनावै बिहँसि कै।
चस्म जख्म की पीर, को जानै खाये बिना॥

दोहा-दर्शन

मन भीज्यो रस राग मैं, अधिक बढ़ावत आग।
है सँजोग शृंगार सर, है बियोग बैराग॥

गज जोबन उनमत चल्यो, ऐंचै मैन मद ओप।
संका संकुल तोरि कै, लज्जा अंकुस लोय॥

प्रीति परस्पर दंपतिनि, यों भासित दुति अंग।
बहुत दुराये दुरति नहिं, ज्यों सीसी को रंग॥

भुज उलटन उकसन कुचन, मुसकनि भ्रुव तिरछान।
कमर भ्रमन घुमरन बसन, उर उरझन गति आन॥

मोकों कछु सूझत नहीं, तू का बूझति बाल।
इन आँखिन मैं ह्वै रह्यो, कारो पीरो लाल॥
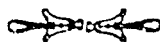
विविध-विलास

(४)

वरनास्रम कर्म उपासन में,
दृढ़ नेम सुन्यों सिर ताते धुन्यो ।
व्रत तीरथ जज्ञ पुरान कुरान मैं,
नेम को जानि कै नाहिं गुन्यो ॥
पुनि लौकिक हू वेवहार मैं नेम,
प्रधान कियो तव नाहिं चुन्यो ।
नटनागर नेम सुन्यों सव मैं,
पर प्रेम मैं नेम लख्यो न सुन्यो ॥

जाहर हैं कलि के नर नाहर,
वाहर सुद्ध न तौ मन माहीं ।
मांस तथा मदिरादिक सेवत,
लोभ कुनारि के कामही भाहीं ॥
पुन्य के काज मैं लाज लगै,
अरु साधु समाज को देखि डराहीं ।
गाहक थे जव थे न गुनी,
रु गुनी अव हैं पर गाहक नाहीं ॥

भगीरथ रघु अज दसरथ रामचन्द्र,
कविन प्रताप देखौ अजौं लगि छाये हैं।
नागर जू जदु कुरुवंस आदि दै कै सब,
और हू अनेक नृप आछे पद पाये हैं।
भोज वीर बिक्रम से कविन करे प्रसिद्ध,
कविन जे गाये दाता अजौं न छिपाये हैं।
ऐंठि रहे द्रव्य पाय कवि बिसराय बैठे,
बढ़े जे गवाँर ते गवाँरन नै गाये हैं॥

अरथ किये ही बिन अरथ अभ्यास जाय,
वर्ण लघु दीरघ को जथा जोग कढ़िबो।
मात्रा अनुस्वार छंद भंग को विचार राखै,
स्वर ललिताई सों सभा को चित्त मढ़िबो॥
चातुर ह्वै चाकर सुने ये ऐसे आखरन,
मूरख हू मौन गहे वाके चित्त चढ़िबो।
नागर जू ऐसे जो पढ़ै तौ मन मोहिं लेत,
चित्त ना पसीजै तौ कवित्त कहा पढ़िबो॥

कहाँ सत्रु-मित्रताई जामैं बैर प्रीति नाहिं,
कहाँ प्रेम-नेम जहाँ जाहिर निवाहना।

कहाँ सनबंध सगे पुत्र भ्रात मात तात,
  कहाँ कुल-गोत्र जामैं बेद-रीति राह ना ॥
कहाँ नटनागर जू नागरता अंग-अंग,
  गुन रूप दोऊ मिलैं ताकी है सराहना ।
कहाँ वे हैं बान जो तौ अरि के न हरैं प्रान,
  तो वे नैन कहाँ लागे निकसै जे आह ना ॥

रूप सौं न जोबन सों काम धन धाम ही सों,
  नाम सों न काम देखैा दीनन दुनी के हैं ।
बीन रु रुबाब आदि नाम के न आसिक हैं,
  आसिक प्रतच्छ एक मधुर धुनी के हैं ॥
नागर जू काहूँ सों विवाद करनो ही नाहिं,
  जाहिर है हाल मस्त ताही बीच नीके हैं ।
नर के न गाहक त्यों गाहक न नारि हू के,
  यारि हू के गाहक न गाहक गुनी के हैं ॥

यों जग बनाये कौन भाँति बन्यो ऐसो जाको,
  कहैं स्वस्ति सिद्धि साफ साफ बुधवारे हैं ।
ज्ञान को न लेस कौन भाँति ह्वै प्रवेस देखैा,
  कहा उपदेस करै भ्रम तम भारे हैं ॥

नागरता देखौ नटनागर की ठौर ठौर,
जिनको लखात नाहिं भीतर सों कारे हैं।
सोधन कियो न सार नर तन भूलि बैठे,
बुध मतवारे ते अबोध मतवारे हैं॥

भानु को का उपमान खद्योत की,
रंक समान धनेस को कीजै।
साँप धरा के समान का संकर,
डींड्ढ समान का सेष गनीजै॥
नागर साँच रु झूठ समान का,
ज्यों कुलटा कुलवान भनीजै।
नैन की ऊपमा बान की का त्यों,
कमान की ऊपमा भौंह को दीजै॥

(९)

ग्रन्थ-निर्माण दोहा

ग्रन्थ-समाप्ति-छन्द

हरचष इन्दु षंड महिमानो,
अब्द अंक गति बाम पिछानो ।
कार्तिक कृष्णपक्ष सुभजोई,
चौथि सनी संपूरन होई ॥
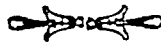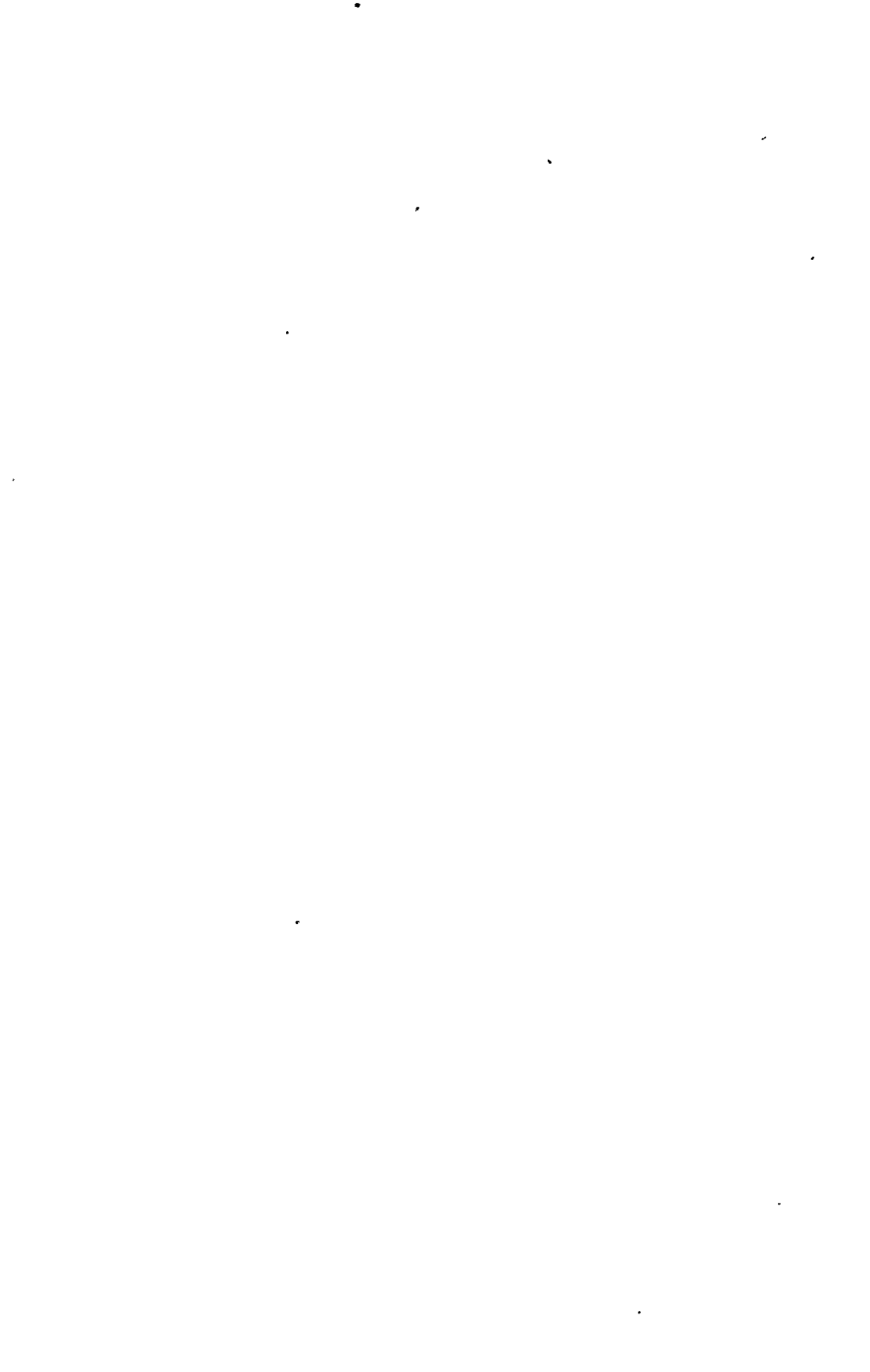
परिशिष्ट

नीसाँणी सिरखुली ।

"नीसाँणीं" डिंगल का एक मात्रिक छन्द है। इसके कई भेद होते हैं, उनमें से एक भेद यह 'सिरखुली' भी है। वैसे नीसाँणीं का साधारणतया जो प्रचलित रूप है, वह यह है :—

गौरीस्या मन कर गरब , फौजाँ फरमाणीं ;
लाखों लशकर लँगर ले , जुध करवा जाणी।
मँडिया सोमाँ मोरचा , रणसींग रुढ़ाँणी ;
धूँयें अंबर ढकिया , दिनरात दिखाँणी।

उपर्युक्त उदाहरण में पूर्वार्द्ध १३ मात्राओं का, उत्तरार्द्ध १० मात्राओं का है और अंत में तुक मिलती है, परन्तु इस 'सिरखुली' नीसाणीं के पूर्वार्द्ध में २ और उत्तरार्द्ध में ९ मात्राएँ हैं। हाँ, उत्तरार्द्ध के अन्त में जहाँ कहीं 'एक गुरु और एक लघु' ऐसा रूप आ गया है, वहाँ १० मात्राएँ हैं। यह अन्त्यानुप्रासरहित है, इसी से सिरखुली है। दोहे के उत्तरार्द्ध को पूर्वार्द्ध और पूर्वार्द्ध को उत्तरार्द्ध कर देने से जैसे 'सोरठा' बन जाता है, वैसे ही एक प्रकार की नीसाँणीं में लौट-फेर

कर देने से यह रूप बना है। इसी से इसमें सोरठे ही के समान बीच में तुक है और अन्त में वैसा ही अतुकान्त रूप। यही 'सिरखुली नीसाँणीं' का भेद है।

डिंगल में—विशेषकर डिंगल के उन पद्यों में जिनमें मुसलमान बादशाह, अमीर-उमरा अथवा शाही सेना से सम्बन्ध रखनेवाली बातों का वर्णन होता है— अरबी, फ़ारसी शब्दों का प्रयोग कुछ अधिक पाया जाता है। परन्तु उन शब्दों का शुद्ध रूप तो बहुत कम मिलता है, अन्यथा वे अशुद्ध और विकृत रूप में ही अधिक देखने में आते हैं। नीसाँणीं छन्द का प्रयोग प्रायः वीररस वर्णन में विशेष किया जाता है। इस सिरखुली नीसाँणीं में भी एक वीरगाथा गाई गई है और उस गाथा का सम्बन्ध मुग़ल बादशाहों से होने के कारण इसमें अरबी, फ़ारसी शब्दों का प्राचुर्य्य एवं पंजाबी की पुट प्रधान है। परन्तु इसके उन अशुद्ध शब्दों की शुद्धि नहीं की गई, उनका वही पुराना रूप रहने दिया है, जिसमें इसकी वास्तविकता बनी रहे, नष्ट न हो। प्रत्येक समय की और प्रत्येक लेखक या कवि की अपनी एक शैली होती है। उसको नष्ट कर देने का किसी को अधिकार नहीं। बस, उसकी वास्तविकता को अक्षुण्ण रखते हुए साधारण संशोधन ही किया जा

सकता है और इसमें वही किया गया है। और, कतिपय क्लिष्ट एवं अपभ्रंश शब्दों के शुद्ध रूप पाद-टिप्पणी में दिये गये हैं।*

नीसाँणी सिरखुली।
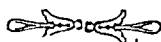
तखत जिहाँ[1]-सिर आली, दिल्ली सहर स्याह।
स्याहों[2]-सीस कमाली[3], आदिल[4] स्याजिहाँन[5]॥
दहसत जाहि कराली[6], सातों साह-सिर।
तिनदा[7] हुकुम अदाली[8], ऊपर हिंद दे[9]॥
फरजंद बहुत खुसाली, अर[10] वह[11]-नौवाहार।
औरंग दखण उथाली[12], पूरब सुज[13] स्याह॥
मुहिमाँ[14] बहुत कराली, वगसी बादस्याह।
पूरब दखण उथाली, तेगा[15] मार मार॥

---

* नीसाँणी के सम्बन्ध में उपर्युक्त नोट एवं कठिन शब्दों पर पाद-टिप्पणियाँ आदि मुंशी अजमेरी जी ने लिखी हैं।

१—जहाँन। २—शाहों-बादशाहों। ३—कमाल का। ४—मुंसिफ़। ५—शाहजहाँ। ६—कराल। ७—उनका। ८—इंसाफ़-वाला। ९—के। १०—और। ११—वहती है, चलती है। १२—उथलदो अर्थात् औरंगज़ेब ने दक्खिन को उथल-पुथल कर दिया। १३—शाहशुजा। १४—चढ़ाइयाँ। १५—तलवारों से।

वहोत दिनों वाहाली, ऐसे हीं रही।
दिल्ली ऊपर हाली[१], सेंन दुहूँन[२] दी॥
अकवक धर[३] वेहाली, मौला क्या करै।
स्याँजिहाँन सुण ह्वाली[४], दरदाँ बीच दिल॥
वाईसी[५] सिर घाली, जैसिंघ जैनगर[६]।
पूरव माथै[७] चाली, सुज सूँ करण जँग॥
औरंग-सोस - हँकाली[८], नवखंड मारवाड़।
सित्तर[९] खाँन धमाली, वहत्तर अमराव॥
जसवंत मूहँ अगाली[१०], वोलत आफरीं[११]।
साह-हुकुम सिरझाली[१२], अदव वजाव रद॥
दस्तवस्त मुह लाली, सह[१३] सूँ यूँ अखा[१४]।
हुकुम कहा सहसाली[१५], वंदा रूवरू॥
हुकुम दादरुह[१६] आली, औरंग खाक[१७] साक।
वारयाव[१८] कर चाली, सेंनज साह दी॥

१—चली। २—दोनों की—शुजा की और औरङ्गज़ेब की। ३—धरती। ४—हवाल। ५—वाईस सरदारों या सेनापतियों-वाली सेना। ६—जयपुर के महाराज जयसिंह। ७—ऊपर। ८—हाँकी गई, हँकी। ९—सत्तर खाँन और वहत्तर उमराव धमधमें। १०—आगे। ११—प्रशंसासूचक शब्द। १२—शिरोधार्य करके। १३—शाह, वादशाह। १४—कहा। १५—अली शाहंशाह। १६—न्यायमूर्ति अर्थात् वादशाह ने दिया। १७—मटियामेट, नेस्तनाबूद। १८—सलाम।

तेग दस्त वर झाली[१], फील सवार हुवै[२] ।
दस्त[३] मूँछ वर घाली[४], जसवंत यूँ अखै[५] ॥
फौर करौं वेहाली, पकड़ों पातसाह[६] ।
सैन चली, धर हाली, दंत वराह डिग ॥
लचकै सेस फँणाली, चारूँ दिग डोल ।
कच्छप पीठ तयाली, मरदाँ[७] मचक लग ॥
नदियों थकत रहाली, सुण जसवंत नूँ ।
समँद सोख[८] भय खाली, खंगे तेग गहि ॥
ऐसी सेन जलाली[९], वर औरंगजेव ।
खेत उजीण[१०] सँभाली, तेगों तीर कज ॥
औरंग सुण अहवाली, सोजस तन-वदँन ।
दिढो[११] कूँच अड़ियाली[१२], वीवै[१३] वहुत सँग ॥
जम उर वीच दहाली, जालम तुरक लिख[१४] ।
चीतै सेर लियाली[१५], मारै मुक्कियों[१६] ॥

१—पकड़ी। २—हुए। ३—हाथ। ४—डालकर। ५—कहै। ६—जो वादशाह वना हुआ चला आ रहा है, औरंगज़ेव; यह भाव। ७—मर्दों की मचक लगने से। ८—शोषण, भय खाया, समुद्र ने। ९—बड़े पराक्रमवाली। १०—उज्जैन। ११—दृढ़ हुआ चलने को। १२—अड़नेवाला। १३—वीवियाँ। १४—लख, देखकर या लेखकर। १५—चीते को, शेर को और लियाली अर्थात् भेड़ियों को। १६—घूसों से मार डाले।

पीवैं मद वहु प्याली, तुकल[1] इक जुंमसा।
मुगदर वहुत विसाली, खूब हिलांव दे॥
तीरंदाज अकाली[2], मारै मोतियाँ[3]।
देखण ख्याल कराली, औरंग[4] नो अरुज॥
हल्ली सेन उताली, पोसद[5] आयताव।
पिछल्या[6] रहे त्रिपाली[7], अगल्यों[8] आव[9] मिल॥
दोउ सेन सुथराली[10], आँख्याँ सूँ लखी।
जसवंत फौज सँभाली, भैया रतन कहाँ॥
फिदव्याँ[11] तें गुजराली, राजा रतनपुर[12]।
साज जुद्ध गय चाली, लेण[13] रठोड़ नूँ॥
सुथर लखे रतनाली[14], दिल हा[15] वाक वाक।
खत नजरों विच भाली[16], तोपाखान[17] खुट[18]॥
वगतर[19] झिलम कड़ाली, सूँड़ो-पक्खरों।
सिकलीगराँ उताली, हक्के कू व कू॥

१—गजक, चाट। २—अकाली सिख। ३—तीर से मोती को उड़ानेवाले। ४—औरंग का उरूज अर्थात् प्रताप। ५—आफ़ताब यानी सूरज, पोशीदा, छिप गया गर्द में। ६—पीछेवाले। ७—प्यासे। ८—आगेवालों को। ९—पानी मिलता था। १०—सुथरी, सुन्दर सजी हुई। ११—फ़िदवियों ने अरज़ गुज़ारी। १२—रतलाम। १३—लेने राठौड़ को। १४—रतनसिंह को अच्छा देखकर। १५—हुआ बाग़ बाग़, प्रसन्न। १६—देखकर। १७—तोशाखाना। १८—खुला। १९—बख्तर, झिलम टोप और पाखरें तथा सूँडें (घोड़े के मस्तक पर बाँधने की चमड़े की मज़बूत चीज़) निकाली गईं।

सेफाँ[१] बहु सुथराली, अंगल[२] बाढ़ खिच।
रतनागर[३] उमगाली, वरसिर सहजदों[४] ॥
त्यार किया तेजाली[५], चढ़िये उरसखंभ[६]।
मनूँ घटा कजराली, बारद जोस अब ॥
वहदी जमुन कराली, ज्यूँ मिल समँद मँझ।
रतन नजर बिच भाली, जसवँत भर धरे ॥
अब अखबार सुनाली, काले[७] गिरँद नूँ।
सुण कै गई खुसाली, जंग विच गुसल दी ॥
सब[८] बीतत नभ लाली, चख तोपाँ लखें।
दिल्ली तखत कराली, तेगों बाढ़ पर ॥
औरंग सुण अहवाली, आग वज्राग[९] जाग[१०]।
औरंग उलट[११] कहाली, वहोत खूब बात ॥
तोपाँ दगत कराली, फौजाँ हलचली।
अख[१२] अला अलयाली, खीवर[१३] खूटिया[१४]॥
हरिअक[१५] बागाँ हाली, टूक पहाड़ दे।
बाजें खग[१६] इकताली, वररुख मुगलयों ॥

१—तलवारें। २—अंगुल भर की बाढ़ रक्खी गई। ३—रत्नाकर-रतनसिंह-उमगा। ४—शाहज़ादों के सिर पर। ५—तेज़ घोड़े। ६—आकाश का स्तम्भ। ७—काले पहाड़,को। ८—शब, रात। ९—वज्राग्नि। १०—जगी। ११—लौटकर कहलाया। १२—कहकर अल्ला अल्ला या अली। १३—विपची मुसलमान। १४—छूटे। १५—घोड़ों की बागें, लगामें हिलीं। १६—तलवारें एक ताल पर बजने लगीं।

खागों बाढ़ खराली, आपस बीच खुब[१] ।
देखण ख्याल[२] कपाली[३], भाग्या ध्याँन तज ॥
चौंसठ[४] लख खपराली, हड़ हड़ हड़ हँसे ।
कलकै[५] वीर कराली, हलकै साकण्याँ[६] ॥
गोरा[७], काला, काली, विहवल हो रह्या ।
भूत-प्रेत-डगचाँली[८], मानूँ करत वत[९] ॥
हूर-परी सब काली[१०], मानूँ भंगचित ।
छंड विवाणां[११] चाली, सिर पर रतन त्रास ॥
गोकल[१२] तुरक विलाली, सुरपत रतन सीँ ।
तेगां[१३] त्रिभड़ भड़ाली, पहरों तीन लग ॥
रुधिर नदी उबकाली[१४], माथां[१५] कछ रूप ।
मीन तड़फ ज्यों जाली[१६], बगतर बीच धड़ ॥

१—खूब । २—तमाशा । ३—महादेव । ४—चौंसठ लाख खप्पर वाली जोगिनें अट्टहास करने लगीं । ५—किलकते हैं । ६—साकिनी । ७—गोरे, काले भैरव और काली । ८—डाकिनी । ९—वात । १०—काल्ही, बावली, पागल । ११—विमानों को छोड़ कर चलीं, रतन का शीश लेने, अर्थात् रतन को वरण करने । त्रास शायद इस बात की हो कि जाने किसे मिलता है और मिलता है या नहीं; यदि महादेव जी की मुंडमाल में चला गया तो बस । १२—गोकुलरूपी तुरकों पर सुरपति रतनसिंह ने । १३—तेगों की झड़ी लगा रक्खी तीन पहर तक । १४—उमग चली । १५—मस्तक कछुवों के समान तैरते थे । १६—जाल में जिस तरह मच्छ, इस तरह बख्तरों में धड़ तड़पते थे ।

गिरझ[1] ओंत[2] ले चाली, जाँण पतंग-डोर।
रतन[3] पड़े रण खाली, औरंग धू[4] अड़ग॥
तखत दिली अल आली, दाद न तुरकरा।
अमरावों बेहाली, रंकों सरफराज[5]॥
जीता जंग कराली, करम करीम[6] दे।
बर मरदुम खुद आली, चाहै सो करै॥
कितरे हाल कहाली, रतने रतन दा।
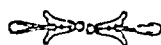
दुहा (सोरठा)

खागों[7]-वल खेड़ेच, ते झँझियो[8] औरंग तुरक।
घण पड़दाँ विच घेच, आथमियों[9] माहेस[10] उत॥
औरंग आग-वजाग, प्रलैकाल[11] पसर्‍यो पृथी।
लूँबाँ बरसण-[12]लाग, सुरपत दूजो रतन सीं॥
औरंग अण आकास, हल्लोहल[13] कर हालियो[14]।
सीहा[15]-उत कर हास, ऊफण[16] तो राख्यो अवल॥

१—गृद्धिनी। २—आंत, अँतड़ी। ३—रतन के पड़ने से, धराशायी होने से। ४—ध्रुव की तरह। ५—रंक खुश हुए। ६—करीम के करम से। ईश्वर की दया से। ७—तलवारों के बल से। ८—तूने झूड़ डाला। ९—अस्त हुआ। १०—महेशदास नन्दन रत्नसिंह। ११—प्रलयकाल की तरह पृथ्वी पर पसरा, फैला। १२—लूँम झूँम कर बरसने लगा। १३—हलचल करके। १४—चला। १५—सीहाजी के वंशज। १६—उफनते हुए को।

औरंग गयण[१] अथार, भुजाँ[२] तोल आयो भिड़ण ।
जहर सँकर जिय जार[३], ऊभो[४] तूँ माहेस उत ॥
रयणागिर राठोड़, वल[५] काढ़्यो तैं वीवरो ।
लड़ लोहाँ सूँ लोड़[६], पाथर[७] अत कीधो प्रगट ॥
छकियो[८] गज छंछाल[९], औरंग यूँ डाणाँ लग्यो ।
रतन लँगर[१०] पगराल, तें वाँध्यो माहेस तण ॥
औरंग लहर अथाह, चढ़ी घणीं चौंडाहरा[११] ।
गयँद खुराँ सूँ गाह,[१२] तें दावी महेश तण ॥
औरंग भमँग[१३] अगाह[१४], वाँई वँध वादी[१५] वणे ।
सेल उड़द कर साह, कँडिया[१६] विच घात्यो[१७] कमध ॥
हरनायक[१८] पतसाह, धूथ करे डाटी धरा ।
वाँई वंध वराह, तें काढ़ी[१९] माहेस तण ॥

१—आकाश, गगन । २—भुजाओं को तोल कर, खम ठोंक कर, भिड़ने को आया । ३—पचाकर, हजम करके, जिस तरह शंकर जहर को पचा गये थे । ४—खड़ा है । ५—वल, ख़म, वाँकपन अर्थात् तूने उसका वाँकपन काढ़्यो यानी निकाल दिया । ६—ओट कर, धुनकर, कुचलकर । ७—मैदान । ८—छका हुआ मद से । ९—मस्त हाथी । १०—उसके पैर में लंगर, हे महेशनंदन रतसिंह तूने ही डाला, अर्थात् तूने ही उसे जंज़ीरों से जकड़ा । ११—चौंड़ाजी के । १२—रौंदकर । १३—सर्प, भुजंग । १४—जो पकड़ा न जाय । १५—वाद़ीगर जो वाद,खेलता है । १६—सेलरूपी उड़द मारकर, कँाड़िया में, टिपारे में । १७—डाला । १८—हिरण्याक्ष । १९—निकाली ।

औरंग तिमिर अपार, पसर्यौ इल[1] ऊपर प्रबल।
जुको[2] अँधारो जार, तूँ ऊगो[3] माहेस तण ॥

१—पृथ्वी। २—वह। ३—उदित हुआ।
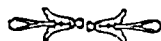
अनुक्रमणिका

छन्दों का आदि-भाग

विषय पृष्ठ

की

कु

कू

कै

को

ख

खि

खे

विषय | पृष्ठ

ग

गा

गु

गो

गौ

घ

च

विषय | | पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

जा

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

थी

थे

दा

दि

दी

दु

दे

विषय पृष्ठ

ना

नि

नी

ने

नै

नं

विषय पृष्ठ

प

पा

पि

पी

पु

पू

विषय		पृष्ठ

बा

बि

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

मा

मि

मी

मू

मै

मो

विषय पृष्ठ

रू

रे

ल

ला

लि

लो

व

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

सा

सु

सो

विषय पृष्ठ

हे

है

हो

त्र

——